आरोग्य
मंजरी
डा॰ वेदप्रकाश शास्त्री

वेद में चिकित्सा-शास्त्र

आयुर्वेद या चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों का वेद में विशेषकर अथर्ववेद में वर्णन मिलता है। सुश्रुतकार के मतानुसार ऽआयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है।

"इहखल्वायुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य ऽअनुत्पाद्येव प्रजाः कृतवान् स्वयंभूः।"

सू.सू.अ. 1

यह उपवेद इस समय उपलब्ध नहीं, किंतु इतना निश्चित है कि इस उपवेद से ही आयुर्वेद तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियाँ विविकसित हुईं। वेद के बीजभूत मंत्रों में सबसे पहले वैद्य के लक्षण बताए गए हैं–

यत्रौषधीः समग्मत राजनः समिताविवेव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहऽमीव चातननः ॥ ऋ. 10।97।

अर्थात् वैद्य विद्वान सांगोपांग आयुर्वेद जाानने वाला, औषधियों का संग्राहक और योजक होना चाहिए। इसी प्रकार शरीर विज्ञ्ज्ञान के विषय में निम्न बातें बताई गई हैं।

यास्ते शतं धमनयोंऽङ्गान्यनु विष्ठिताः।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि हवयाामसि ॥ अ. 6.10

अर्थात् शरीर के प्रत्येक भाग में विभिन्न ननाड़ियाँ हैं। इन नाड़ियों में विष का संचार होने से अनेक रोग होते हैं। भाव है–स्वस्थ रहने के लिए नाड़ियाँ निर्विष रखनी चाहिए अन्यथा निम्नलिखित रोग होने वका भय है–

अंगभेदो अंगज्वरो यश्चते हृदया मयः।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापपत वया साढः पररस्तराम ॥ अ. 9.3-9

अंग ज्वर, अंग टूटना, हृदय व्यथा, क्षय आदि। किंतु यदि नाड़ियाँ निर्विष हुईं तो ये रोग उसी प्रकार भाग जाएँगे जैसे श्येनन पक्षी। इन व्याधियों के अतिरिक्त अन्य व्याधियों का भी उल्लेख मिलता है।

1. क्षेत्रिय व्याधिः–पैत्रिक या सहज, ययद्यपि यह असाध्य होती है तथापि अथर्ववेद में इसका भी उपचार मिलता है।

2. निऋृति–अनियमित आहार-विहार सेसे होने वाले रोग।

आयुर्वेदीय त्रिदोष तत्व भी इससे संबंधित है क्योंकि माधव निदान में बतलाया गया है–

मिथ्याहार विहारभ्यां दोषा ह्यामाशया श्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदास्युः रसानुगा ॥

मिथ्याहार विहार से दोष (वात, पित्त, कफ) कुपित होकर अमाशय में जाकर रस धातु को बिगाड़ कर पेट की आग को बाहर निकाल देते हैं, वही गर्मी शरीर को गर्म कर देती है। इसी को ज्वर कहते हैं।

3. आगः–फैलने वाले रोग।

4. दुरितम्–सदोष पदार्थों से उत्पन्न होने वाले रोग।

वर्तमानकाल में जितनी भी चिकित्सा-पद्धतियाँ दृष्टिगोचर होती है। उनमें से अधिकांश का वर्णन वेद में मिलता है। सर्वप्रथम आयुर्वेदांतर्गत प्राकृतिक चिकित्सा का वेद में निम्नलिखित रूप में वर्णन पाया जाता है–

प्राकृतिक चिकित्सा

1. सूर्य चिकित्सा–विष सूर्य चिकित्सा द्वारा दूर होता है। जैसे कि "ये अंगानि मदयन्ति....विषं निरवो महंत्वत"–अथर्व।

विष के अतिरिक्त सूर्य किरणों द्वारा अनेक रोग दूर होते हैं। यह चिकित्सा 'रश्मि-स्नान' नाम से प्रसिद्ध है।

2. वायु चिकित्सा–वायु चिकित्सा का मूल है। यह बलदायक तथा आयु वर्धक है तथा अपने साथ संपूर्ण औषधियाँ ले कर बहता है। ऋग्वेद 3-10-137 में वायु के लिए 'विश्व भेषजः' शब्द प्रयुक्त हुआ है। जिसका अर्थ है विश्व की औषधि या सम्पूर्ण औषधि इससे वायु चिकित्सा की महत्ता पर काफी प्रभाव पड़ता है। साथ ही प्रातः भ्रमण के लाभ तथा तत्कालीन वायु का शरीर पर प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है।

3. जल चिकित्सा–ऋग्वेद में इसका वर्णन मिलता है, जैसे–

अप्सु में सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानी भेजषः।
अग्निच विश्व संभुव मापश्च विश्व भेषजीः ॥ ऋग. 1.-2-12
आपो हिष्ठा भयो भुगवस्तान ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ ऋग. 7-6.5

इन मंत्रों से ज्ञात होता है कि जल में संपूर्ण औषधियां वर्तमान हैं। अतः वे मेरे शरीर में गए हुए रोग बीजरूपी विष को बाहर ले आवें। 'विश्व भेषजी' 'मयो भुवः', 'शिव तमो रसः' आदि से विदित होता है कि जल चिकित्सा उस समय भी

प्रचलित थी। उपरोक्त तीन मंत्र वाक्यों से तीन बातों का पता चलता है। जल में संपूर्ण औषधियां रहती हैं, वह हितकारी आरोग्य वर्धक और सुख कारक हैं। यह आरोग्य कारक कल्याण कारी अर्क है। जल तीव्रतम औषधि है। 'जलं व उग्रभेषजम्' अतः आशु फलप्रद है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रधान अंग औषधियों का वेद में वर्णन देखिए। औषधि-ओष-दोष-मलादि, धी-धोने वाली अर्थात रोगों को दूर करने वाली वस्तु औषधि कहलाती है। "या औषधि पूर्वाजाता देवेभ्य स्त्रि युंग पुरा" ऋ. 8, 5, 10, 1 इस मंत्र से औषधि की उत्पत्ति, जाति, संख्या एवं उनके कार्य का बोध होता है भिन्न-भिन्न रोगों के लिए भिन्न-भिन्न औषधियों का वर्णन मिलता है।

1. उन्माद रोग के लिए पिप्पली औषधि "पिप्ली: क्षिप्र भेजषजी" अ. 9. 10.106

2. श्वेत कुष्ठ नाशक रामा कृष्णा आदि का वर्णन नक्तं जाता स्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च। इदं रंजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥अ. 1.24

3. केश वर्धक अ. 6.137 में।

4. अपामार्ग क्षुधा-तृषा को दूर करने के लिए अ. 6.6.97

5. रोहिणी मांसादि को बढ़ाने के लिए अ. 4.125। उपरोक्त औषधियों के अतिरिक्त 4.37 में अश्वत्थ, न्यग्रोध, अर्जुन, कर्करी आदि वनस्पतियों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

रोगजन्तु शास्त्र

आधुनिक एलोपैथिक को इसका श्रेय दिया जाता है कि उसमें ही सबसे पहले रोग के कीटाणुओं की खोज की गई। चिकित्सा में सरलता आई। वास्तव में बात इसके विपरीत है। वेद और उसके उपांगभूत आयुर्वेद में भी रोग के कीटाणुओं का वर्णन मिलता हैं। इतना होते हुए भी प्राचीन आचार्यों ने इन रोग कीटाणुओं के स्थान पर विशेष महत्त्व त्रिदोष को दिया है। इसका कारण स्पष्ट है कि वे लोग इस विषय की गहराई में जितने पहुँचे हैं उतने आधुनिक नहीं। सब जानते हैं–किसी वस्तु में सड़न उत्पन्न होने के पश्चात् ही रोग के कीटाणु पैदा होते हैं जैसे हैजा आदि में। इसी प्रकार आयुर्वेद में भी इनका वर्णन मिलता है पर दोष के पश्चात्, अतः त्रिदोष की महत्ता स्पष्टरूप से सिद्ध हो जाती है। ऐलोपैथिक में रक्त को मुख्य माना जाता है किंतु आयुर्वेद में रस को क्योंकि रस से रक्त बनता है। मूल और मुख्य वस्तु

को जान लेने के पश्चात गौण का विशेष महत्त्व नहीं रहता, इसी लिए रोग कीटों की चर्चा विशेष रूप से नहीं मिलती। फिर भी वेद में इस विषय का वर्णन पाया जाता है–"ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिवतो जनान्" यजु. 16.62। अर्थात् जो जन्तु जल या भोजन द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर रोग उत्पन्न करते हैं। आजकल यूरोपीय विद्वान भी इससे सहमत हैं। अंतड़िओं एवं पसलियों में जाकर रोग पैदा करने वाले कीटाणुओं के विषय में अथर्ववेद के 2.31.4 मंत्र में वर्णन मिलता हैं अथर्ववेद के 2.31.2 मंत्र में रोगोत्पादक कृमियों की छः जातियाँ बताई हैं। जो निम्न हैं–(1) अवस्कव, (2) व्यष्वर, (3) कुसरू, (4) अल्गुण्ड, (5) छलुन तथा (6) रुद्र। उनमें रुद्र विशेष भयानक है क्योंकि "रोदयन्तीतिरूद्रा", यही प्लेग आदि संक्रामक रोग फैलाते हैं। इसके अतिरिक्त शर्व-प्राण घातक है, भीम-भयंकर, बलघ्न-उन्माद आदि 20 प्रकार के कृमियों का वर्णन मिलता है। चिकित्सा संचालक वैद्य के लिए वेद में 'रक्षोहा' शब्द आया है, जिसका अर्थ है राक्षस-हंता। वैद्य औषधियों द्वारा रोग जन्तु का नाशक होने के कारण उक्त शब्द सार्थक है। राक्षस रोगजन्तु का भी वाचक है। ये कीट रजः कण से भी सूक्ष्म होते हैं।

यज्ञ–हवन चिकित्सा

इसीलिए वेद में यज्ञ की कल्पना की गई है जिससे औषधि धूम के सहयोग से वायुमंडल में फैलकर सब कीटाणुओं को नष्ट कर दे। रोग जन्तु नाश के लिए वनस्पति प्रयोग भी बताया है–"वनस्पति सह देवैर्न आगत। रक्षः पिशाचानपि बाधमानः"॥ अ. 12.3.15। अर्थात् दिव्य गुणयुक्त वनस्पति राक्षस (रोग कीटों) के नाश के लिए आ गई और "अजः शृंग्येन रक्षः सर्वान् गन्धेन नशय" अ. 4. 37-2। अजशृंगी नामक वनस्पति अपनी गंध से रोग कीटों को नष्ट करे। रश्मि स्नान का भाव भी ऐसे सूक्ष्म कीटों का नाश ही है। सुश्रुत, चरक में स्थान-स्थान पर रक्षोघ्न औषधियों का वर्णन आता है।

उपरोक्त चिकित्सा पद्धतियों के अतिरिक्त वेद के 'अपचेतः प्रपतत' 6.83.8। मंत्र से सौर चिकित्सा तथा "अनुसूर्यमुदयतां हृद द्योत हरिमाच ते। गोरोहितस्य वर्णेन तेनत्वा परिध्ममसि" ॥ अ. 1.22। मंत्र में पाण्डु रोग तथा हृदय रोग की चिकित्सा का वर्णन है। बताया गया है कि पाण्डु रोग में खुले शरीर सूर्योदय के समय उनके प्रकाश में बैठना तथा हृदय रोग में लाल गाय का दूध पीना बहुत लाभदायक है।

शल्य चिकित्सा

"यदंत्रेषु" आदि मंत्र में शलाका मूत्राशय में शिश्न द्वारा प्रवेशकर मूत्र-दोष निवारण की विधि का वर्णन मिलता है। इस विषय को शल्य चिकित्सा के अंतर्गत लिया जा सकता है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर निष्पक्ष रूप से कहा जा सकता है कि विश्व में प्रचलित समस्त चिकित्सा-पद्धतियों का आदि स्त्रोत वेद है।

●

आयुर्वेदीय ऋतुचर्या उसका महत्व और स्वास्थ्य

वेदों में "शतं जीवेम शरदः" कहकर मानव की आयु का ही निर्देश नहीं किया गया अपितु मानव को यह उपदेश दिया गया है कि अपनी पूर्ण आयु का उपभोग करने के लिए आयुर्वेद के सभी नियमों को जीवन में ढालना आवश्यक है।

हमारे महर्षियों ने मानव को भूलों का आगार समझते हुए ऋतुचर्या-दिनचर्या आदि की व्यवस्था की है। काल का विभाजन संवत्सर में करने के बाद ऋतुचर्या के दो भाग सूर्य की गति के आधार पर किए गए हैं। इनमें पहला है विसर्गकाल (दक्षिणायन) यह सौम्य और स्वास्थ्यअभि वृद्धि के लिए अनुपम है। दूसरा आदान काल या उत्तरायण है जो स्वास्थ्य के लिए निकृष्ट है क्योंकि—

"आदानं पुनराग्नेयं तावेतावर्क, वायु सोमश्च काल स्वभाव मार्ग परिग्रहीताः कालर्चुरसो देहावना निवृत्ति प्रत्यय भूता समुपदिश्यंते। तत्रविर्भाभिरादतेदानो जगतः स्नेहं वायवस्ती रूक्षाश्चोप शोषयन्त शिशिर वसन्ते-ग्रीष्मे यथा क्रमं रौक्ष्यं युत पादयन्तो रुथान रस्रांन तिक्त कषाय कटुकांश्चाभि वर्द्धयन्तो नृणां दौर्बल्यं मावहन्ति"—च. सू.।

वाग्भट में ऋतुचर्या के विषय में निम्न वर्णन उपलब्ध होता है—

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड् ऋतवः स्मृताः।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्म वर्षा शरद्धिमाः॥
आदान-उत्तरायण
शिशिराद्यै स्त्रिभि स्तैस्तु विद्यादयन मुत्तरम्।
आदानं च तादादत्ते नृणां प्रतिदिनं बलम्॥
तस्मिनं ह्यत्यर्थ तीक्ष्णोष्ण रूक्षा मार्गस्वभावतः।
आदित्य पवनाः सौम्यान् क्षययन्ति गुणान् भुवः॥
तिक्तः कषायः कटुको बलिनोऽत्ररसा क्रमात्।
तस्मादा दान माग्नेयम्........॥

अर्थात् माघ आदि दो-दो माह को पृथक् करने से 6 ऋतुएँ मानी गई है।

जैसे—माघ-फाल्गुन शिशिर, चैत्र-बैशाख, वसन्त, ज्येष्ठ-आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद वर्षा, आश्विन-कार्तिक-शरद, मार्गशीर्ष और पौष-हेमन्त, इस प्रकार 2-2 मास की 1-1 ऋतु होती है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में सूर्य उत्तरायण होता है। यह 6 मास का समय आदान काल कहा जाता है। इस नाम करण का कारण यह है कि इस काल में भगवान् सूर्य प्रतिदिन पृथ्वी से स्नेह भाग का आकर्षण करते हैं। क्योंकि इस समय में सूर्य और वायु अपनी गति के स्वभाव से अर्थात् सूर्य की गति उत्तर की ओर होने से प्रतिदिन सूर्य की किरणें तीक्ष्ण होती जाती हैं। अतः सूर्य और वायु अत्यंत तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष होने से पृथ्वी के स्निग्ध, गुरु आदि सौम्य गुणों का नाश कर देते हैं। इसी कारण उत्तरायण में तिक्त कटु और कषाय ये तीन रस क्रमानुसार बलवान हो जाते हैं तथा मधुराम्ल लवण ये तीन रस क्षीण हो जाते हैं, अतः इस आदान काल को अग्नि गुण भूयिष्ठ होने से आग्नेय कहा गया है।

दक्षिणायन-विर्सग काल

ऋतुवो दक्षिणायनम् ॥
वर्षादयो विसर्गश्च यद्बलं विसृजत्ययम्।
सौम्य त्वादत्र सोमो हि बलवान् हीयते रविः ॥
मेघ वृष्ट्यनिलैः शीतैः शांत तापे महीतले।
स्निग्धाश्चेहाम्ल लवण मधुरा बलिनो रसाः ॥

वर्षा, शरद और हेमन्त इन तीनों ऋतुओं को दक्षिणायन कहते हैं क्योंकि इन 6 महीनों में सूर्य की गति दक्षिण की ओर से होने से सूर्य का बल क्रमशः क्षीण हो जाता है और सोम का बल क्रम से बढ़ता जाता है और सौम्य गुणों की वृद्धि होती जाती है, एवं मेघ, वर्षा और शीतल वायु से पृथ्वी का ताप शांत हो जाता है। इस समय स्निग्ध मधुर और लवण ये तीन रस क्रमशः बलवान् हो जाते हैं। भाव यह है—जेसे आदान काल में शिशिर ऋतु तिक्त, वसंत में कषाय और ग्रीष्म में कटु रस वाले पदार्थ विशेष बलवाले होते हैं, उसी प्रकार वर्षा में अम्ल, शरद में लवण और हेमन्त में मधुर रस विशेष बलवान होते हैं। इसी प्रकार प्राणियों का बल बढ़ता है—यह त्रिविध है।

'शीतेऽयं वृष्टिघर्मेऽल्यं बलं मध्यंतु शेषयोः ॥'

शीतकाल अर्थात् हेमन्त और शिशिर ऋतु में मधुररस और सौम्य गुण की अधिकता होने के कारण प्राणियों में विशेष बल होता है तथा वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में सौम्य गुणों की कमी से मनुष्यों का बल अत्यंत क्षीण होता है एवं शरद और वसंत ऋतुओं में आदान और विसर्ग काल के गुणों की संचित सामग्री की मध्याऽवस्था होने से प्राणियों में मध्य बल रहता है।

किस ऋतु में किस रस का सेवन अच्छा है ?

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसन्तेऽन्त्यान् रसान्भजेत्।
स्वादुं निदाघे शरदि स्वादुतिक्तकषायकान् ॥

अर्थात् हेमन्त, शिशिर और वर्षा ऋतु में मधुर, अम्ल और लवण इन तीनों रसों का विशेष सेवन करना चाहिए। वसंत ऋतु में कटु, तिक्त और कषाय रसों का सेवन विशेष लाभप्रद है। ग्रीष्म ऋतु में प्रायः तिक्त और कषाय रस का सेवन करना चाहिए और निश्चित ऋतु में निश्चित अन्न विशेष का निम्न वर्णनानुसार सेवन करना चाहिए।

शरद्वसन्तयो रूक्षं शीतं घर्मघनान्तयोः।
अन्नपानं समासेन विपरीत मतोन्यथा।

भाव यह है कि शरद और वसंत में ऋतु में रूक्ष अन्नपान का सेवन करना चाहिए। ग्रीष्म और शरद ऋतु में शीतल पदार्थों का सेवन करना चाहिए (शीतल का अर्थ शीतल स्वभाव वाले से लें)। हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में स्निग्ध पदार्थों का सेवन करें एवं हेमन्त, शिशिर, वर्षा और वसंत ऋतु में उष्ण अन्नपान का सेवन करना चाहिए, इसके साथ ही सदा सब रसों का सेवन का भी आदेश है। ''नित्यं सर्व रसाभ्यासः स्वस्वाधिक्य मृतावृतौ'' अर्थात् प्रायः नित्य मधुर अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त इन छहों रसों का सेवन करना चाहिए, परंतु जिस-जिस ऋतु में जिस-जिस आहार-विहार का विशेष सेवन करना विशेष हितकर कहा गया है उस-उसका विशेष प्रयोग करना चाहिए। इस विषय में ऊपर बताया जा चुका है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव आदि का विचार कर दोष, धातुओं को साम्यावस्था में रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति के विपरीत जैसे वात प्रधान को स्निग्ध, पित्त प्रधान को शीत और कफ प्रधान को उष्ण पदार्थ सेवन करना हितकर है। इसी प्रकार देश, धातु आदि का विचार कर साम्याऽवस्था उत्पन्न करने के लिए देश, काल और देह के अनुरूप आहार-विहार की कल्पना करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त ऋतु संधि में निम्न वस्तुओं को सेवन करना चाहिए—

ऋत्वोरन्त्यादि सप्ताहावृतु सन्धि रिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात् ॥
असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसात्याग शीलनात् ॥

पहली ऋतु अंतिम और दूसरी ऋतु का प्रथम सप्ताह ऋतु-संधि कही जाती है, जैसे—शिशिर ऋतु के अंत के 7 दिन और वसंत ऋतु के आदि के 7 दिन मिला कर 14 दिन की ऋतु-संधि हुई। इसमें क्रमशः धीरे-धीरे शिशिर ऋतु की चर्या को

त्याग, क्रमानुसार वसंत की ऋतुचर्या का अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि सहसा पहली ऋतु की चर्या को त्याग कर दूसरी ऋतु चर्या का अवलंबन करने से असात्म्य जनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अतः ऋतु की संधि में पहले ऋतु की चर्या का क्रमशः त्याग, आने वाली ऋतु की चर्या का अभ्यास करना चाहिए।

आयुर्वेद के मतानुसार वायु, कफ और पित्त ये तीन दोष रोगारोग के कारण हैं। हमारे सभी सिद्धांत इन्हीं दोषों पर आधारित है। ऋतुचर्या के द्वारा महर्षियों ने हमें बताया है किस ऋतु में क्या खाना चाहिए क्या पहनना चाहिए और कब सोना चाहिए। यदि हम इन स्वर्णिमसूत्रों को अपने जीवन में ढाल लें तो कोई कारण नहीं की भारत संतान अपने पूर्वजों के समान ही धीर-वीर-गंभीर न हो जाए। ऋतुचर्या मञ्जरी में दोष और ऋतुओं के विषय में बड़ा सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है।

वायुर्मायु कफं चेति त्रयोदोषा शरीरिणाम्।
विकृताऽविकृताघ्नन्ति पालयन्ति कलेवरम् ॥1॥
व्यायामादपतर्याच्च भङ्गाज्जागरणात् क्षयात्।
प्रपाताद् वेग रोधाच्च शोकाच्छैत्याद् व्यवायतः ॥2॥
क्षे भाद्रुक्षकषायाभ्यां कटु तिक्ताति सेवनात्।
पौषे माघे तथा ऽऽषाढ़े मार्गे भाद्रेऽथ श्रावणे ॥3॥
अन्ने परिणते चैव परारात्रेऽपराह्न के।
वायु प्रकोप मभ्येति प्रवदन्ति चिकित्सकाः ॥4॥
जृम्भणं रोमहर्षं च विक्षिपाक्षेप शोषणम्।
वेष्टनं छेदनं तृष्णा स्वापोऽङ्गानामनिद्रता ॥5॥
स्तम्भाध्माने क्षोभरौक्ष्ये पारुष्यं कण्ठ ध्वंसनम्।
विस्पन्दोद् घट्टनं कम्प स्रंस शूल श्रमाणि च ॥6॥
वर्णः श्यावोऽरुणो मोहः स्यात् कषायो रसस्तथा।
एवमादीनि कर्माणि करोति कुपितोऽनिलः ॥7॥
विदाह्युष्णैश्च तीक्ष्णैश्च क्षारशुक्तारनालकैः।
कट्वम्ल लवणैः क्रोधोपवासातप सेवनैः ॥8॥
तिलातसी शुष्क शाकैः श्रम मैथुन सेवनैः।
वैशाखे ज्येष्ठयोश्चैव आश्विने कार्तिके तथा ॥9॥
मध्याह्ने वाऽर्ध रात्रे वा भुक्ते जीर्यति भोजने।
विषमैर्भोजनैश्चान्यैः पित्तं प्रकुपितं भवेत् ॥10॥
स्वेदोमूर्च्छा भ्रमोदाह विस्फोट मद दारणम्।
पाकोऽरतिस्तृषा स्रावः दौर्गन्ध्योष्ण तमस्तथा ॥11॥

रसा कट्वम्ल तिक्तास्युर्वर्णः पाण्डु विवर्जितः।
क्वथितत्वं च कर्माणि मायो प्रकुपितस्य च ॥12॥
नवीनाम्बुजलैर्दुग्धैर्दध्यध्यशनकै स्तिलैः।
द्रवापूपेक्षुभक्ष्यैश्च मत्स्यैः स्वापेन वादिवा ॥13॥
गुरुभिर्मधुरैः स्निग्धैः रसैर्वा भुक्त मात्रके।
श्लेष्मादि नादौ रात्र्यादौ वसन्तेऽथ हिमेनवा ॥14॥
गुरुत्वं स्तैमित्यं श्वयथु चिरकर्तृत्व शयने।
मलाधिक्यं कण्डूररुचिरपलेपः शिशिरता ॥
अपक्ति स्तृप्तिश्चास्मृतिरिति बलासस्य सरुषः।
स्फुटं लिङ्गं साधु पटुरपि रसोभा च धवला ॥15॥
कफं तु तीक्ष्णैर्वशययेदमित्रवत्,
सुमित्रवत् स्निग्ध रसैस्तथा निलम्।
सुशीतलैर्वा मधुरैः सदा सदा सुधी—
जयेत्सुजामातर वच्च पित्तकम् ॥16॥
कफ प्रकोपे वमनं सनस्यं,
विरेचनं पित्त भवे विकारे।
वातामये वस्ति विशोधनं च,
संसर्ग जेस्यात्प्रविमिश्रमेतत् ॥17॥
धातवः—रसासृङ् मांस मेदोऽस्थिमज्जा शुक्राणिधातवः।
सप्तैवेत्यथसंवक्ष्ये ऋतुचर्या समासतः ॥18॥

इस प्रकार इस विवेचन में दोष क्या हैं वे क्यों और कब उत्पन्न होते हैं। अधिक व्यायाम, अति मैथुन, मिथ्याहार विहार का परित्याग करने से ये तीनों दोष साम्यावस्था में रहकर मनुष्य को परिपुष्ट करते हैं। भिन्न-भिन्न ऋतुओं का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है और इस लेख में यह संक्षिप्त रूप से वर्णन किया जा चुका है कि किस ऋतु में किन और कैसे पदार्थों का सेवन करना चाहिए और कब किनका परित्याग। विसर्गकाल और उसकी ऋतुएँ स्वास्थ्य संपादन के लिए महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि सूर्य का बल कम होकर चन्द्र का बल बढ़ता है। इस विषय में महाकवि कालिदास का रघु-दिग्विजय-विषयक श्लोक स्मरणीय है रघुवंश में—

...................................दक्षिणस्यांरवेरपि।
तस्यांमेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥

इसके द्वारा विदित होता है कि विसर्गकाल मानव के लिए उत्तम है और सूर्य इस समय आदानकाल में लिए हुए स्नेह भाग को लौटा देता है। महानता के कारण

जैसा कि महानात्माओं का स्वभाव होता है–

आदानंहि विसर्गाथ सतां वारिमुचाभिमच

इसके अतिरिक्त निम्न विषय भी जो सूत्ररूप में वर्णित है, ध्यान देने योग्य हैं–आयुर्वेद मानव जीवन को पूर्ण स्वस्थ देखना चाहता है। इसलिए स्वास्थ्य की पूर्ण परिभाषा केवल एक श्लोक में दे दी है–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यमिभिधीयते ॥

भाव स्पष्ट है–स्वस्थ वह है जिसके वात, पित्त, और कफ तीनों दोष समान हों, पाचकाग्नि मंद विषम या अति न हो, शरीर में रस, रक्त आदि धातुएँ न कम हों न अधिक, मन वाणी आदि शारीरिक तथा मानसिक क्रियाएँ ठीक ठीक हों और आत्मा, इन्द्रियाँ और मन स्वस्थ हों, वही वास्तव में सच्चा सुखी है। इसके विपरीत जो सर्व साधन संपन्न होकर भी बनावटी आनंद पाने की इच्छा रखता है, वह मानस शास्त्र के अनुसार दुखी है। पाश्चात्य सभ्यता का सभी बातों में अनुकरण करते हुए हम यह भूल जाते हैं कि वे हमारे आयुर्वेदीय सिद्धांतों की कसौटी पर सुखी सिद्ध नहीं होते। प्रायः विदेशों के अधिकांश व्यक्ति नींद की गोली लिए बिना सो भी नहीं सकते। तंबाकू, चाय, अफीम, शराब, कोकीन आदि मादक द्रव्यों ने भी आधुनिक समाज को 'अप्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः' का प्रमाणपत्र दे दिया है। दुख भुलाने के लिए यद्यपि इनका सेवन किया जाता है, पर इससे मानव समाज की दशा चिंतनीय होती जा रही है। प्रायः नशई कहा करते हैं कि नशा सेवन से उन्हें प्रसन्नता और संतोष मिलता है, पर यह गप्प है।

स्वास्थ्य और दोषों की साम्यावस्था तीन उपस्तम्भों पर आधारित है। ये उपस्तम्भ हैं : आहार, नींद और ब्रह्मचर्य–

त्रय उपस्तम्भा आहार स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति ॥–च. सू. अ. 11

इनके प्रति मानव को कभी लापरवाह नहीं होना चाहिए। इस विषय में प्रमाद स्वयं मृत्यु के आह्वान के समान है। इन तीनों उपस्तम्भों का संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। भोजन में वायु और जल का भी अंतर्भाव है इस विषय में पृथक् पर्याप्त लिखा जा चुका है फिर भी ध्यान रखें–'क्षीर घृताभ्यासो रसायनानां श्रेष्ठतम्' दूध और घी का सेवन श्रेष्ठतम रसायन है। इन्हीं वस्तुओं से हमारे शरीर का विकास और पुष्टि होती है। साथ ही भोजन के संबंध में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए। भोजन चबाकर धीरे-धीरे करें। भोजन पर भोजन न करें, पौष्टिक और सुपाच्य भोजन करें। थकावट के बाद विश्राम करें और तब भोजन करें। जल भोजन के मध्य में या 1 घंटा पूर्व अथवा 3 घंटे बाद पीएँ, व्यायाम और प्रातः वायु

का सेवन करें। भोजन के बाद तत्काल न सोएँ। अधिक चटपटी मसालेदार चीजें न खाएँ, चिंतारहित होकर समय पर सोएँ और उठें। चिंतातुर व्यक्ति सो भले ही ले पर निद्रा से लाभान्वित नहीं हो सकता। निद्रा के विषय में लिखा है कि ठीक नींद उसे ही आती है–

ब्रह्मचर्य रते ग्राम्य सुख निस्पृहचेतसः।
निद्रां संतोष तृप्तस्य स्वकालं नातिवर्तते।

अर्थात् जो मनुष्य सदाचारी है, विषय भोग में निस्पृह है, संतोषी है उसे समय पर निद्रा अवश्यमेव आ जाती है। अनिद्रा से पीड़ित व्यक्तियों को आयुर्वेद के इस मत पर ध्यान देना चाहिए। तीसरा उपस्तम्भ है ब्रह्मचर्य और वही वास्तव में मानव को देवोपम बनाने की योग्यता प्रदान करता है और आजकल की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए बिना बनावटी साधनों के संततिनिरोध का अचूक उपाय है। यह संयम पर आश्रित है। इसके अतिरिक्त दीर्घायु आदि के लिए तथा अकाल मृत्यु से बचने का यही एकमात्र उपाय है। भारत जैसे देश में जहाँ आयु का परिमाण अति न्यून है और जन-आनन निस्तेज से दीखते हैं। वहां ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है लिखा है–

"दीर्घायुष्य कराणां ब्रह्मचर्य श्रेष्ठतमम्" तथा
"ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमपाघ्नत"

संयमविहीन जीवन से स्वास्थ्य की दशा का पर्यवेक्षण कर ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य करना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यायाम की उचित रीत्यापालन करने की अतीव आवश्यक है। महर्षि चरक ने इस विषय में बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है–

शरीर चेष्टा या चेष्टास्थैयार्था बलवर्धिनी।
देह व्यायाम संख्याता मात्रया तां समाचरेत ॥

अर्थात् शरीर की जो चेष्टा देह को स्थिर रखने और उसका बल बढ़ाने वाली हो, उसे व्यायाम कहते हैं और उसका उचित मात्रा में सेवन करें।

शरीरोपचयः कांति गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवमृजा ॥

व्यायाम करने से शरीर की पुष्टि, कांति, मांसपेशियों के उभार आदि का ठीक विभाजन, तीव्र जठराग्नि, आलस्य हीनता, स्थिरता, हल्कापन, मलादि की शुद्धि और थकावट, सुस्ती, प्यास, गर्मी आदि सहन करने की शक्ति प्राप्त होती है, एवं–

"न चैवं सहसा क्रम्य जरा समधिरोहति"

अर्थात् व्यायाम करने वालों पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं कर पाता। इसके अतिरिक्त निम्न का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

1. व्यायाम-निषेध—रक्तपित्त का रोगी, कृश, शोथ, श्वास, खाँसी और उरःक्षत से पीड़ित, तुरंत भोजन करने वाला, दुर्बल तथा चक्कर से पीड़ित मनुष्य को व्यायाम नहीं करना चाहिए।

2. स्नान-निषेध—अफारा, अतिसार, ज्वर, अरुचि, अजीर्ण तथा भोजन के बाद एवं अर्दित, नेत्र रोग, मुख रोग और जुकाम में भी स्नान का निषेध है।

3. निषिद्ध-भोजन—अपवित्र, जूठा, तृणादियुक्त, मन को अप्रिय, बासी, अस्वादिष्ट और दुर्गंधित अन्न का सेवन न करें। अति चटपटा या नमकीन भोजन भी त्याज्य है। थकावट के बाद और व्यायाम के बाद भी भोजन न करें। खाने का अन्न-जल कभी खुला न रखे इससे कीटाणुओं का प्रवेश हो रोगोत्पत्ति का भय रहता है।

इस प्रकार आयुर्वेद में ऋतुचर्या का वर्णन इस दृष्टि से किया है जिससे मानव सचेष्ट रहकर आरोग्य रह सके। जो विषय स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण विषय को प्रतिपादित करता हो उसका महत्त्व तो स्पष्ट है ही साथ ही ऋतुचर्या का भी हमारे लिए बहुत महत्व है। आज के चकाचौंध उत्पन्न करने वाले युग में जबकि मानव-तन रोगागार बनता चला जा रहा है। हमें चर्या पर विशेष ध्यान देते हुए अपना स्वास्थ्य और धन बचाकर देशोन्नति में योग देना चाहिए और वही कार्य करना चाहिए जो यश का भागी बनाए और उत्तम स्वास्थ्य बनाए क्योंकि—

"धीमता तद्नुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानु वर्तते"

●

वसन्त ऋतु और स्वास्थ्य

आयुर्वेद और संस्कृत साहित्य में वसंत ऋतु का वर्णन मानव की प्रसन्नता और स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए किया गया है। वस्तुतः रस राज शृंगार का उद्रेक तो ऋतुराज वसंत के काल में ही हो सकता है इसलिए जितना सरस और मनोहारी वर्णन संस्कृत साहित्य में किया गया है, वह अन्यत्र सर्वथा सुदुर्लभ है। रसकवि जयदेव ने भगवान श्री कृष्ण के वसंत-विहार का वर्णन कितने हृदयहारी शब्दों में किया है—

विहरति हरिरिह सरस वसन्ते।
नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥

साथ ही कुमारसंभव, विक्रमोर्वशीय, नैषध आदि महाकाव्यों का वसंत वर्णन तो अनुभव की वस्तु है।

जहाँ संस्कृत साहित्य ने मानव मन को परितुष्ट करने का प्रयत्न किया वहाँ आयुर्वेद में मानव को पूर्ण स्वस्थ बनाने के लिए वसंत ऋतु की चर्या का वर्णन कर मानव को जागरूक बनाने का प्रयत्न किया गया है। वाग्भट सूत्र स्थान अध्याय 3 में वसंत ऋतु की चर्या का वर्णन निम्न रूप में उपलब्ध होता है।

कफश्चित्तो हि शिशिरे वसंतेऽर्कांशुतापितः।
हत्वाग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरयाजयेत् ॥18॥

अर्थात् शिशिर ऋतु में संचित हुआ कफ वसंत ऋतु में सूर्य रश्मियों से तापित होकर अग्नि को नाश कर रोगों को उत्पन्न करता है। अतः कफ को वसंत ऋतु में कफ जनित रोग उत्पन्न करने से पूर्व जीत लेना चाहिए।

क्योंकि वसंत ऋतु में कफ का स्वाभाविक राज्य है श्लेमज रोगों का आधिक्य होने से इस ऋतु में वैद्यों को प्रचुर लाभ होता है, इसीलिए वैद्य जगत् में यह ऋतु पितृवत् मानी गई है। "वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः" एक ओर कफ का राज्य इधर मनुष्यों के शरीर में शीतकाल के संचित कफ का प्रकोप होने का भी स्वाभाविक काल वसंत ऋतु है। इस कारण कफजन्य रोग उत्पन्न होने से पूर्व ही यदि तीक्ष्ण वमन नस्यादि द्वारा कफ का हरण कर लिया जाए तो इस

ऋतु में होने वाले रोग उत्पन्न नहीं होते इस लिए आगे बताई गई विधि द्वारा कफ को शीघ्र जीत लेना चाहिए।

तीक्ष्णवमन नस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्च भोजनैः।
व्यायामोद्वर्तना घातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम् ॥19॥
स्नातोऽनु लिप्तः कर्पूर चन्दनागुरु कुंकुमैः।
पुरणयवगो धूम क्षौद्र जांगल शूल्यभुक् ॥20॥

प्रथम तीक्ष्ण वमन और नस्य आदि क्रियाओं से तथा हल्के रूक्ष आदि भोजन से एवं व्यायाम, उद्वर्तन (उबटन), भागना, कूदना आदि द्वारा कफ को जीत कर फिर यथाविधि स्नान कर कपूर, चंदन, अगर और केशर का लेपन कर पुराने यव (जौ) और गेहूं से बना हुआ भोजन और मधु अथवा शूल पर भुना हुआ जंगली जीवों का मांस (कबाब) का सेवन करना चाहिए। यों तो सभी प्रकार के व्यायाम कफ सुखाने के लिए इस ऋतु में उत्तम है, पर भ्रमण विशेष हितकर है क्योंकि कहा है 'वसंते भ्रमणं पथ्यं' साथ ही इस ऋतु में अर्थात् वसंत पंचमी से लेकर चैत्रपर्यंत (मार्च-अप्रैल) में भूल कर भी अधिक खट्टी, अधिक मीठी चीजें, दही, सिंघाड़ा, ठंडी और बासी चीजें तथा गरिष्ठ पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। शाक दाल में अदरख, काली मिर्च, छुहारे आदि का प्रयोग हितकर है। चीनी के बदले में मधु अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

इस ऋतु में भूने कच्चे आम का रस (अमैटा) इमली का रस आदि का पीना भी लाभप्रद है। साथ ही इस ऋतु में स्नान से पूर्व ही व्यायाम कर लेना हितकर है। स्नान के समय तैर लेना सर्वोत्तम व्यायाम है। चैत्र या अप्रैल में आँतों की सफाई के लिए मृदुविरेचन (जुलाब) लेना भी हितकर है। इसके साथ ही—

सहकार रसोन्मिश्रानास्वाद्य पिययार्पितान्।
प्रियास्य संगसुरभीन् प्रियनेत्रोत्पलाकितान् ॥20॥
सौभाग्य सौम्य कृतो हृद्यान् वयस्यैः सहितः पिबेत्।
निर्गदानासवारिष्टं सीधु मार्द्वीक माधवान् ॥21॥

प्रिया के मुख से सुगंधित तथा प्रिया के नेत्र रूपी कमलों से अंकित एवं प्रिया के स्वकर प्रदत्त आम्र के रसयुक्त निर्दोष आसव अरिष्ट, सीधु, आदि को द्राक्षासव और मध्वासव अपने मनोनुकूल, प्रिय एवं सुंदर स्वभाव वाले मित्रों के साथ बैठ कर पान करना चाहिए। देखिए, इसी प्रकार के आसव पीए हुए श्री बलराम जी का वर्णन कितनी सुंदरता से शिशुपाल-वध में किया गया—

ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया।
मुखामोदं मदिर या कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥—शि. व. स. 2-20

इसके साथ ही अग्र वस्तुओं का पान करना भी श्रेयस्कर है।

शृंगवेराम्बु सारांबु मध्ध्वम्बु जलदाम्बु वा ॥22॥

अर्थात् वसंत ऋतु में सोंठ से सिद्ध किया हुआ जल, या विजय सार आदि से सिद्ध जल अथवा मधु युक्तजल या नागरमोथे से सिद्ध किया हुआ जल पीना चाहिए। इसके अतिरिक्त—

दक्षिणानिल शीतेषु परितोजल वाहिषु।
अदृष्ट नष्ट सूर्येषु मणिकुट्टिम कांतिषु ॥23॥
पर पुष्ट त्रिधुष्टेषु काम कर्मांत भूमिषु।
विचित्र पुष्प वृक्षेषु काननेषु सुगंधिषु ॥24॥
गोष्ठी कथाभिश्चित्राभिर्मध्याह्न गमयेत् सुखी ॥

अर्थात्—वसंत ऋतु में मध्याह्न का समय ऐसे सुंदर बाग में व्यतीत करें जिसमें दक्षिण का शीतल मंद, सुगंध वायु बह रहा हो। चारों ओर सुंदर जल पूर्ण नहर या झरने प्रवाहित हो रहे हों। वृक्षों की सघन छाया सूर्य ताप का परिहार कर रही हो। मणि के सदृश स्फटिक निर्मित उपवेशन स्थान जहाँ तहाँ बने हुए हों। कोयल की मधुर कर्ण प्रिय ध्वनि सुनाई पड़ती हो। काम क्रीड़ादिक के लिए मनोरम स्थान बने हुए हों। विचित्र सुगंधित पुष्पों से मण्डित वृक्षावलियाँ उद्यान की शोभा बढ़ा रही हों। ऐसे उद्यान में राग-द्वेष से रहित होकर मन को प्रिय लगने वाली अनेक प्रकार की कथा वार्ता आदि से मध्याह्न सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहिए और—

"गुरुशीत दिवास्वप्न स्निग्धाम्ल मधुरांस्त्यजेत् ॥25॥

इस ऋतु में दिन में शयन करना, गुरु, स्निग्ध, शीतल, अम्ल एवं मधुर पदार्थों का सेवन सर्वथा त्याग देना चाहिए यहां मधुर से गुरु स्निग्ध मीठे पदार्थों का निषेध है जो कफ वर्धक है परंतु लघु, रूक्ष, मधु (शहद) आदि पदार्थ जो कफ नाशक हैं उनका निषेध नहीं है। इसी प्रकार जो सदा दिन में सोने के आदि हों उनके लिए भी दिन में सोने के नियम में ढील दी जा सकती है पर है यह हानिप्रद ही क्योंकि दिन में सोने से कफ की वृद्धि होकर अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं इसीलिए कहा गया है—

दिवास्वापादि दोषैश्च प्रतिश्याय श्च जायते।
प्रतिश्यायारुचि कासः कासात् संजायते क्षयः ॥

अतः यथासंभव दिन में सोने से बचना ही चाहिए। रोग आदि की अवस्था में तो ढील सब नियमों और चर्या में आ ही जाती है, फिर भी यथा शक्य ऋतु चर्या का पालन करना मानव का परम धर्म है।

संस्कृत साहित्य के समान वसंत ऋतु का बड़ा ही सरस और मनोहारी वर्णन

'चर्य्या मज्जरी' में दिया गया है, जो उपरोक्त भावों पर आधारित है–

कुम्भे तथा वै पृथ्युरोम युग्मे हंसे गतेस्यात्कुसुमागमर्तुः।
पथ्याहितास्यान्मधुना विमिश्रिता अर्द्धावशिष्टं जलमत्रपेयम् ॥1॥
कफश्चितोसौ शिशिरे प्रबृद्धः पुष्यागमे तीक्ष्ण मयूषतप्तः।
हत्वा कृशानुं प्रबलान् गदांश्च करोतियस्मात्त्वरयाजयेत्तम् ॥2॥
सुखाम्बुना शौच विधिर्विधेयो, व्यायामनस्य लघुतीक्ष्ण रूक्षम्।
वम्यंजनं ग्रासग्रहं प्रशस्तं धूमं तथोद्वर्तनमस्यजेतुम् ॥3॥
स्नातोऽनुलिप्तस्तु तुषार योगजैः सशोणितैश्चन्द्र मयूषः संयुतैः।
पुराण गोधूम यव कपिंजलं शारभ्रमेणेय शशांश्च शीलयेत् ॥4॥
हृद्यांश्च कामाङ्ग रसैविमिश्रितान् प्रिया प्रदत्तान् सहितोवयस्कैः।
तदासवारिष्टक सीधु माधवा ननामयान्योहि पिवत्सशर्मभाक् ॥5॥
विल्ल्वस्तनीनां सुविलासिनीनां झणत्क्वणत्कंकण नूपुराणम्।
क्षामोदरीणां च प्रमादिनीनामुच्छिष्टमद्यं सुखदं वसंते ॥6॥
कामप्रदस्य शुभ पुष्प सुगन्धितस्य, पापापहस्य मुनि सिद्ध निषेवितस्य।
आराम भूमिगसुसज्जन सेवितस्य, पुष्पागमस्यसुखदो मधुनो मिलापः ॥7॥
प्रियाधराकर्षित गन्ध रम्यं प्रियादृशाबिम्बित मध्य देशम्।
मद्यं पिवेदार्द्रक वारिचात्र, मध्वम्बु, साराम्बु घनाम्बुवाऽपि ॥8॥
अदृष्ट सूर्ये मणिकुट्टिमाभे सुकोकिला नादितचित्र वृक्षे।
कथाश्रुते चोपवने विचित्रे मध्याह्नमेव गमयेत्सुधीरः ॥9॥
आयाता मधुरजनि मधुरजनी गीति हृद्येयम्।
अंकुरितः स्मरविटपी स्मरविटपी नस्तनीमबलाम् ॥10॥
मधुराम्लं दधि स्निग्धं शीतमजीर्णं तथापियद्द्रव्यम्।
नो सेवेत्सुखमिच्छन्नवनीहारं दिवापि शयनं च ॥11॥

इस प्रकार वसंत ऋतु की यथाविधि चर्या का पालन करना मानव के स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है। बुद्धिमान प्राणी का कर्तव्य है कि वह सदा अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरुक रह कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो। भारत जैसे देश में जहाँ परंपरा की एक बृहद् शृंखला विद्यमान है और जहाँ सदा मोक्षेच्छु प्रादुर्भूत हुए वहाँ स्वास्थ्य की अतीव आवश्यकता है। भारत जैसे निर्धन देश के नागरिक यदि सब आयुर्वेद वर्णित चर्याओं का ही विधिवत् पालन करें तो उन्हें किसी भी अन्य साधन की स्वास्थ्य रक्षण के लिए आवश्यकता न रहेगी। यह सब विचार कर आशा है पाठक आयुर्वेद की इस उक्ति पर ध्यान देंगे।

धीमता तदनुष्ठेयं स्वास्थ्यंयेनानुवर्तते

•

ग्रीष्म ऋतु और स्वास्थ्य

प्रकृति की वास्तविक लीला-स्थली यदि कोई है तो भारत ही। विश्व में अन्य देश प्रायः ऐसे नहीं जहाँ, प्रत्येक ऋतु आती हो और वहाँ की जनता उन ऋतुओं के लाभालाभ से परिचित हो, वहाँ इनका नाम केवल गणनीय वस्तु मात्र है। ग्रीष्म ऋतु जैसा कि नाम से ही प्रगट है तीव्र ग्रीष्म और भयंकर विशूचिका आदि रोगों की जनयित्री है।

लू का मौसम

सुश्रुत में दोष-क्रम से इस ऋतु को वैशाख और ज्येष्ठ मास में माना गया है। इस ऋतु का आरंभ वैशाख मास से होता है, सूर्य की तेज किरणें पृथ्वी और वायु को तप्त कर देती हैं। जगत् का तरल भाग शुष्क हो जाता है, शरीर शुष्क और तृषित हो जाता है। क्षुधा कम लगती है, आलस्य रहता है। स्वास्थ्य के लिए यह काल निकृष्ट है। इसकी तीव्रता के विषय में लिखा है–**मयूखैर्जगतः सारं ग्रीष्मे ये पीतयेरिव**। इस स्थिति में जो व्यक्ति ऋतुचर्या का पालन नहीं करते उनका शरीर रोगागार ही नहीं बनता अपितु वे धर्म, अर्थ, कौम मोक्ष जो मानव जीवन के लक्ष्यभूत साधन हैं, उनसे भी वंचित रहते हैं।

ग्रीष्म की तीव्रता आदि से संसार की विकलता बढ़ जाती है। लोग अधिकाधिक शीतल-शांत वातावारण में रहना चाहते हैं। कोलाहल समाप्त प्रायः ही होता है। तपोवन की-सी शांति संसार में व्याप्त रहती है। बिहारी जी इस विषय में लिखते हैं–

कहलाने एकत बसत अहि, मयूर, अरु बाघ।
जगत तपोवन सो कियो दीरघदाघ निदाघ ॥

और संस्कृत में

ग्रीष्मे तीक्ष्णांशुरादित्यौ प्राणिनांनैऋतुतोऽसुखः
भूस्तप्ता सरितस्तच्यो दिशः प्रज्वलता इव।

भ्रान्ताश्चकाङ्क्षयुंगला पयः पाना कुला मृगाः
ध्वंसवीरूतृणलता विपर्णाङ्कित पादपाः ॥

कितना सत्य एवं भीषण वर्णन है। सभी जीव जन्तु; वृक्षादि तृषित और आकुल हो जाते हैं। जगत् का तरल और स्नेहांश रुक्ष और शुष्क हो जाता हैं क्योंकि इससे पूर्व की ऋतु वसंत कफ की ऋतु थी, यदि उस समय का कफ का वमन न किया जाए तो ग्रीष्म में कफजन्य रोग और अधिक उपद्रवों तथा भीषणता के साथ उत्पन्न होते हैं। जैसा कि सभी जानते हैं, पित्त की गति ऊपर की ओर होती है, इसमें यदि वात का संयोग हो जाए तो गति में शक्ति आ जाती है, और यही कारण है कि ग्रीष्म काल में जत्रूर्ध्व और अभिष्यन्दी मानसिक रोग अधिक होते हैं। शरीर और मन पर ग्रीष्म के प्राबल्य से उदासी छाई रहती है।

क्या खाएँ और क्या पीएँ ?

ग्रीष्म ऋतु की परिचर्या का वर्णन करते हुए वागभटकार-अष्टांगहृदय सूत्रस्थान अध्याय 3 में लिखते हैं–

तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीश्मे संक्षिपतीव यत्।
प्रत्यहं क्षीयते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते ॥

अर्थात् ग्रीष्म में तीव्र किरणों वाला सूर्य संसार के स्नेह को नष्ट करता रहता है–इससे मनुष्यों की श्लेष्मा घटती जाती है और वायु बढ़ती जाती है। इस समय–

अतोऽस्मिन्पटुकट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत् ॥

इस ऋतु में नमकीन, कटु और अम्ल रस व्यायाम और सूर्य की किरणों (धूप सेवन) का परित्याग कर दें।

भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम्।
सुशीततोयसिक्ताङ्गोत लिह्यात् सक्तून् सशर्करान्।
ससितं माहिषं क्षीरं चन्द्रनक्षत्रशीतलम् ॥

अर्थात् कटु–अम्ल, और नमकीन द्रव्यों का यथासंभव परित्याग कर मधुर, हल्के, चिकने, ठंडे और पतले (शरबत) आदि पदार्थों का सेवन करें। शीतल जल से स्नान करें। चीनी मिला कर सत्तू पीएँ (चाटें)। चीनी डाल कर भैंस का दूध तथा सुगंधित–शीतल शर्बत पीएँ। गुरु, रूक्ष–बासी भोजन का परित्याग कर देना चाहिए। भूख से कम खाना, व्यायाम और धूप से यथासंभव दूर रहना (कम करना) लाभप्रद है। लिखा है–

स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपान तराहितम्।

शीतं स शर्करं मंथं जांगलान् मृग पक्षिणः ॥
घृतं पयः सशाल्मन्न भजन् ग्रीष्मेन सीदति ॥

उपरोक्त भावों के साथ यहाँ एक विशेष शब्द 'मन्थ' का प्रयोग किया है। मन्थ का अर्थ कुछ व्यक्ति तक (छाछ) लेते हैं पर यह ठीक नहीं क्योंकि मन्थ (तक्र) का निषेध निम्न शब्दों में किया गया है–'नोष्ण कालेन दुर्बले' अतः इसके स्थान पर सत्तू ही लेना चाहिए क्योंकि लिखा है–'शीतवारि गोलित घृतस्याक्ताः नाति स्वच्छा नाति सान्द्राः सक्तवो मन्थः'। इस ऋतु में शीतवारि और सत्तू के प्रयोग पर खूब बल दिया गया है। शीतवारि के विषय में सु॰ सू॰ में लिखा है–'वसन्ते कोप प्रास्रवणं वा ग्रीष्मेष्वप्येव' इसके अतिरिक्त इस ऋतु में और क्या-क्या खाना चाहिए इस विषय में वाग्भटकार लिखते हैं–

कुन्देन्दुधवलं शालिमश्नीयाज्जांगलैः पलैः।
पिबेद्रसं नातिघनं रसालां रागखाण्डवौ ॥
पानकं पंचसारं वा नवमृद्भाजने स्थितम्।
मोचचोचदलैर्युक्तं साम्लं मृन्मयशुक्तिभिः ॥

अर्थात्–ग्रीष्म ऋतु में कुंद पुष्प (मोतिया) और चन्द्र के समान श्वेत-सुगंधित सांठी के चावल उत्तम यूष (और जंगली जीवों के मांस रस का सेवन करें। पतले रस, शर्बत, श्री खण्ड, राग (अनार आदि के खटाई युक्त शर्बत) खाण्डव (मधुराम्ल लवण रस युक्त द्रव्य) या मधुराम्ल लवण कटुकाद्य मिश्रित लेह (चटनी) पानक (द्राक्षा, खजूर, फालसा आदि का शर्बत) नए मिट्टी के पात्र में रखकर पान करें या केला और हरा नारियल या कटहल के टुकड़े अनार की खटाई में डाल मिट्टी के सिकोरे में रखकर पीवे। यहाँ चक्रदत्तकार ने मोच का अर्थ केला और चोच का कटहल किया है पर हेमाद्रि चोच का अर्थ नारियल लेते हैं। श्री शिवशर्मा जी ने मोच से दालचीनी और चोच से तेजपत्र अर्थ लिया है। ग्रीष्म में कूप या झरने का शीतल जल पीने के लिए उत्तम माना गया है क्योंकि कूप जल 'श्लेष्मघ्न दीपनंलघुः' अर्थात् यह चर्बी को नाश करने वाला दीपन और हल्का होता है और झरने का 'कफघ्नं दीपनं हृद्यंलघु प्रास्रवणेऽपि च' यह जल हृदय को रुचिकर, कफनाशक, हल्का, दीपन और अच्छा होता हैं वाग्भटकार लिखते हैं–

पाटलावासितं चाम्भः सकर्पूरं सुशीतलम्।
शशांककिरणान् भक्ष्यान् रजन्यां भक्षयन् पिबेते ॥
ससिंत माहिषं क्षीरं चन्द्रनक्षत्रशीतलम् ॥

अर्थात ग्रीष्मऋतु में पाटला के फूलों से सुगंधित कर कर्पूर से सुगंधित कर शीतल जल पीवें (इस प्रकार का जल पीने से विशूचिका आदि रोगों से बचाव

होकर जठराग्नि ठीक रहती है।) रात्रि के समय कर्पूर, नाडिका अथवा कपूरमिश्रित सुंदर भोजन करते समय चंद्रमा और तारों की छाया में शीतल किया हुआ मिश्री मिला भैंस का दूध पीना चाहिए। जल के विषय में निम्न बातें ध्यान रखने योग्य हैं और वह हैं जल को शीतल करने की विधि ''सप्तशीति कारणानि भवन्ति तद्यथा यष्टिका भ्रमणं व्यञ्जनं वस्त्रोद्धरणबालुका प्रकोपणं शिव्याबलम्बनचेति'' इन उपायों से शीतल किए हुए जल में निम्न गुण आ जाते हैं–निर्गन्धमव्यक्त रसं तृष्णाघ्नं शुचि शीतलम्। अच्छं लघुचहृद्यं च तोयं गुण बहूच्येते ॥ इस प्रकार का जल ग्रीष्म में लाभप्रद है।

मध्याह्नचर्या–

अभ्रङ्कषमहाशालतालरुद्धोणरश्मिषु।
क्लेषु माधवीश्लिष्टद्राक्षास्तबकशालिषु ॥
सुगन्धिहिमवानीयसिच्यमानपटालिके।
कायमाने चिते चूतप्रवालफलुम्बिभिः ॥
कदलीदलकह्लारमृणालकमलोत्पलैः।
कौमलैः कल्पिते तल्पे हसत्कुसुमपल्लवे ॥
मध्यंदिनेऽर्कतापयार्तः स्वप्याक्षारागृहेऽथवा ॥–वाग्भट

इस ऋतु में प्रायः शारीरिक एवं दिन का तापमान बढ़ने से नींद नहीं आती, रात करवट बदलते बीतती है जिससे कोष्ठ बद्धतां, अजीर्ण आदि की संभावना रहती है, अतः शीतल वातावरण में सोने की व्यवस्था करें। क्योंकि इस ऋतु में रातें छोटी होती हैं इसलिए दिन में सोने का निषेध नहीं किया गया है। स्पष्ट लिखा है 'ग्रीष्म वर्जेषु कालेषु'। साथ ही–

श्लेष्मा चादानरूक्षाणां वर्द्धमाने च मारुते।
रात्रिणांचातिसंक्षेपाद्दिवास्वप्नः प्रशस्यते ॥

दिन में सोना कैसे स्थान में चाहिए इस विषय में वाग्भटकार का मत है–''जिस स्थान में विशाल ताल वृक्षों की छाया सूर्य रश्मियों का प्रतिरोध करती हों। वृक्षों पर माधवलता या अंगूरयुक्त अंगूर की बेल चढ़ी हुई हो, खस की मधुर गंध युक्त टट्टियों से द्वार आदि आवृत्त हों, शयन स्थान में आम के कोमल पत्ते बिछे हों, मोर आदि विचरण करते हों वहाँ केले के पत्ते नील–श्वेत कमलों या अन्य विकसित पुष्पों और कोमल पत्तों से बनाई हुई शैय्या पर शयन करें या जल के फुहारों वाले धारा गृह में–सूर्य की गर्मी से मुक्त हो शयन करें। इस विषय में लिखा है–

दिवाशीतगृहे निद्रां शशिचन्द्रांशु शीतले।
भजेच्चन्दन दिग्धाङ्ग प्रवाते हर्म्यमस्तके ॥

रात्रि–चर्या

रात्रि में भी सोने की व्यवस्था उत्तम होनी चाहिए। इस विषय में वाग्भट में लिखा है–

पुस्तस्त्रीस्तनहस्तास्यप्रवृतोशीरवारिणी।
निशाकरकराकीर्णे सौधपृष्ठे निशासु च ॥

भाव यह है कि रात्रि के समय ऊँचे महल की छत पर जहाँ निर्बाध चन्द्र की शीतल किरणें पड़ती हों तथा सुंदर हावभाव पूर्ण स्त्री की पाषाण प्रतिमाओं से फुहारे निकल रहे हों, जल खस से सुगंधित हों, ऐसे स्थानों में सोने बैठने का प्रबंध करना चाहिए। भली प्रकार नींद आने के लिए सुखदायी नर्म स्वच्छ शैय्या की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि कहा है–

स्वास्तीर्णशयनंवेश्मसुखकालस्तथोचितः।
आनयन्त्यचिरं निद्रां प्रनष्टा या निमित्ततः ॥

इसके साथ ही–

आसना स्वस्थचितस्य चन्दनार्द्रस्य मालिनः।
निवृत्तकामतन्त्रस्य सुसूक्ष्मतनुवाससः ॥
जलार्द्रास्तालवृन्तानि विस्तृताः पद्मिनीपुटाः।
उत्क्षेपाश्च मृदूत्क्षेपा जलवर्षिहिमानिलाः ॥–वाग्भट

ग्रीष्म ऋतु में रागादि दोष से रहित, स्वस्थ चित्त वाले, चन्दनादि से लिप्त शरीर वाले, पुष्पहार पहने हुए, काम केलि से निवृत्त, सूक्ष्म रेशमी वस्त्र पहने हुए पुरुष के जल से भिगोए हुए ताड़ पत्रों या जलसिक्त कमल पत्रों से की हुई वायु ग्रीष्म जनित क्लम को दूर कर देती है, तथा–

कर्पूरमल्लिकामाला हाराः सहरिचन्दनाः।
मनोहरकलालापाः शिशवः सारिकाः शुकाः ॥
मृणालवलयाः कान्ताः प्रोत्फुल्लकमलोज्ज्वलाः।
जंगमा इव पद्मिन्यो हरन्तिदयिताः क्लमम्।

कपूर, चमेली के हार, चन्दन का लेप, मनोहर बातचीत, शिशु, तोते और मैना का आलाप, मृणाल वलय (कंकन) धारिणी विकसित कमल के समान उज्जवल कान्तिवाली तथा पद्मिमनी के समान सुंदर स्त्रियाँ भी ग्रीष्मजन्य क्लम को हरण कर लेती हैं।

ग्रीष्म ऋतु में त्याज्य वस्तुएँ—1 वात पित्त को कुपित करने वाला आहार-विहार छोड़ दें, व्यायाम भी कम करें। अच्छा होगा यदि व्यायाम के स्थान पर प्रातः तैरा जाए और भ्रमण किया जाए। शराब इस ऋतु में बिल्कुल नहीं पीनी चाहिए, यदि पीने की आदत हो तो कम मात्रा में मद्यपान करें या अधिक जल मिलाकर पीयें—

"मद्यं न पेयं पेयं वा स्वल्पं सुबहुवारिणा।
अन्यथा शोष शैथल्य दाह मोहान् करोति तत् ॥—वाग्भट

सादा, सात्विक आहार-विहार करें। मौसमी (ऋतु) फलों में खरबूजा, ककड़ी आदि का सेवन करें। इस ऋतु में स्वच्छ और श्वेत रंग के वस्त्र पहनें क्योंकि सफेद रंग सूर्य रश्मियों को आत्मसात् न कर परिवर्तित कर देता है। खादी या अन्य मोटा वस्त्र जिसमें वायु का प्रवेश न हो सके और जो स्वेद शोषक और शीतल रखे उत्तम है। साथ ही इस ऋतु में जूते और छाते का प्रयोग करना न भूलें। इनके प्रयोग से शारीरिक और मानसिक उष्णता नहीं बढ़ती। इस ऋतु में नंगे सिर, पाँव चलने से, शीतल जल कम पीने से लू (अंशुघात) Sun sock का प्रायः भय रहता है। इमली, आम का पानक, पोदीना, प्याज लाभदायक हैं। इस ऋतु में मैथुन से सर्वथा दूर रहना चाहिए क्योंकि—

ग्रीष्मकाले निषेयेत मैथुनाद्विरतोनरः

कारण स्पष्ट है—मैथुन से शरीर में वायु कुपित होगा, क्षीणता आएगी और वह भी उस स्थिति में जब कि इस समय स्वाभाविक क्षीणता होती है। ऊष्मा बढ़ने से उन्माद आदि रोग न भी तो भी रोग क्षमता तो घटेगी ही अतः मैथुन से दूर ही रहें। सामान्य बातें ग्रीष्मऋतु में प्रातः 4 बजे उठ कर शौचादि से निपट भ्रमण-स्नान के समय तैरना, अल्प सात्विक आहार करना, 8-12 तक अध्ययनादि 1-3 तक के मध्याह्न विश्राम, उठकर शर्बत, ठण्ठाई, ऋतु फल का सेवन कर भ्रमणादि से 9 तक निवृत्त हो, 10 बजे तक शयन करना चाहिए। ठण्डाई का निम्न प्रयोग कर सकते हैं—

गुलनीलोफर, खरबूजा-बीज, मगजकद्दू, सौंफ, काली मिर्च, चन्दनचूरा, बादाम, इलायची-बीज, ककड़ी, बीज-खीरा, पोस्त, खस, ब्राह्मी, मुनक्का, गुलाब के फूल सब सम भाग-1 व्यक्ति के लिए 1 तोला पर्याप्त है—यह हृदय के लिए अच्छा तृषा शामक, ऊष्णता नाशक, नेत्रों के लिए तथा मस्तिष्क के लिए लाभप्रद है। बेल, ब्राह्मी या शहतूत-शर्बत भी अच्छा है। चावल या चने का सत्तू भी लें। संक्षेप में—ग्रीष्म ऋतु में कटुता होने के कारण पित्त की वृद्धि होती है और स्निग्धता नष्ट हो जाती है। अन्नादि खाद्य पदार्थ भी इस समय निस्सार और हल्के होते हैं। यही कारण है कि दुर्बल व्यक्तियों में वायु का संचय होता है और वर्षा ऋतु होते ही वह प्रबल हो जाता है। अतः ग्रीष्म ऋतु में आहार-विहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि ग्रीष्म मई और जून में रहती है। अतः इन दिनों मध्याह्न में लू चलने लगती है। इस समय यथासंभव बाहर न निकलें यदि जाना ही पड़े तो जल से प्यास बुझा, छाता लेकर जाएँ। पठन-पाठनादि कार्य 12 बजे मध्याह्न तक ही समाप्त कर लेना हितकर है। वस्त्र रंगीन न पहन कर सफेद पहनें क्योंकि यह शीतल और वह गर्म होते हैं। इस ऋतु में नमकीन और चरपरा सेवन करें, मीठे, हल्के और शीतल तथा पतले पदार्थों का सेवन भी अच्छा है। प्रातः दूध या दही की लस्सी किसी के मत में ठण्डाई, शीतल जल में, घुला हुआ सत्तू जौ का, गुलाब, चंदन, ब्राह्मी, बेल आदि का शर्बत पीना अच्छा है। व्यायाम और भोजन इस ऋतु में कम करें। भोजन में जौ, ज्वार, गेहूँ, चावल, अरहर, मसूर, पेठा, बथुआ, चौलाई, परवल, घीया, तुरई आदि का व्यवहार करें। खीरा, ककड़ी, खरबूजे का सेवन अच्छा है पर खाली पेट इन्हें न खाएँ क्योंकि इससे हैजा आदि होने का भय बना रहता है। इस समय प्याज, हरा पोदीना, इलायची, आँवले का मुरब्बा आदि का प्रयोग लाभप्रद है। खस, कपूर, चंदन आदि से सुगंधित किया जल पीना, शराब न पीना या अधिक जल मिला कर पीना अच्छा है। साथ में ब्राह्मी, आँवला भृंगराज तेलों की मालिश लाभप्रद है। हैजा, पेट फूलना, जी मचलाना, भूख नष्ट हो जाना आदि से बचाव के लिए अर्क पोदीना या अर्क कपूर का प्रयोग या Chlorodein प्रयोग भी प्रशस्त है।

चर्या मंजरी में उपरोक्त भावों पर आधारित ग्रीष्म ऋतु का सुंदर वर्णन किया गया है—

मेषे च वृषभे भानौ गते ग्रीष्मः प्रकीर्तितः।
सगुड़ा विजया पथ्या सलिलं चावशेषितम् ॥1॥
भानुस्तीक्ष्ण मयूखै सारं गृह्णति तत्र मनुजानाम्।
श्लेष्मा तत्र प्रणश्यति तस्मात्सवंर्द्धतेऽथवा वातः ॥2॥
स्निग्धं हिमं वा द्रवमन्त्र सेव्यं जीर्णभजन्नैव दुनोत्यजीर्णात्।
शालिंपलैर्जाङ्गलिकश्च स्वादुं दशांगुलं वा सितया समेतम् ॥3॥
सक्तूंस्तथा शर्करया विमिश्रान् पिवेद्रसन्नातिघनं रसालाम्।
तत्पंचसारं शुभभाजन स्थितं तत्पानकं खाण्डव रागयुक्तम ॥4॥
स शीतजलसिक्ताङ्ग साम्लमृणमयशुक्तिभिः।
बृहत्फलदलैर्युक्तमंशुभत्फलकैस्तथा ॥5॥
शुधांशुतारा ब्रजशीतलं पयः सितायुतं माहिष सम्भवं तथा।
मोघायुतं धीरयुतं सुशीतलं जलं शशाङ्कस्य करान्निशासु च ॥6॥
अत्युन्नतैः सर्जक तालवृक्षैर्वनेषुरुद्धोष्ण करेषु धीरः।

स्वादूत्फलद् गोस्तनिकास गुच्छ समाधवी व्याप्तलता गृहेषु ॥7॥
शुभोत्पलैर्कल्पितसंस्तरेषु कह्लारमोचादल शोभितेषु।
धारागृहेष्वर्ककरैः प्रतप्तः स्वप्पाच्छभेच्छर्दिन मध्यकोले ॥8॥
सर्पत्सारिणि वारिशीतलतले विन्यस्त पुष्पोत्करे।
नीरन्ध्रेकदलीवने गुरुदल छायाहतार्कत्विषि ॥
कर्पूरागुरुपंकपिच्छलघनोत्तुंगस्तनालिंगिभिः।
कान्ताकेलितैरहो सुकृतिभिर्मध्यंदिनं नीयते ॥9॥
छायासुविश्राम्यततस्तरुणां प्रौढिंगते सम्प्रति तिग्मभानौ।
प्रायश्चरित्वा वसुधामशेषां शैत्यंशनैरन्तरपामयासीत् ॥10॥
अस्मिन्नदीषु गिरिकानन कच्छगासु; रम्यस्थलीषु भयहेतुनिराकृतासु।
यः कामिनी जलविहार कृतेजलान्तरालोड्यनीर मनुवर्तराव निर्भीः ॥11॥
यथा यथात्राक्षिपतात्सुकामिनी, सकाम सस्मेरजलाङ्कितान्कणान्।
तथा तथा रोग मुखै प्रमुच्यते, संमर्जितस्वापचयोस्य देहात् ॥12॥
साराम रामा रमणं हितं चेत् स्वामोदिनीरार्ध सुराकपालैः।
सस्मेरत्तुकामात्त कपोलपाली स कामिनी वक्त्र सुबिम्बितैःस्यात् ॥13॥
अंग चन्दन पाण्डुपल्लवमृदुस्ताम्बूलताम्रोधरो।
धारायन्त्रजलाभिषेक कलुषे धोताञ्जने लोचने ॥
अंतः पुष्पसुगन्धिरार्द्रकवरी सर्वाङ्गलग्नाम्बरम्।
रामाणां रमणीयतां विदधति ग्रीष्मापराह्नागमे ॥14॥
सुखीभवेन्मैथुनवर्जितश्च मनोहरालाप सुहारसेवी।
सुसूक्ष्मवासा शुभतालवृन्तः कर्पूर श्रीखण्ड विलुप्तदेहः ॥
अत्यच्छं सितमंशुकं शुचिमधुस्धामोदमच्छंरजः।
कर्पूरं विधृत्यार्द्रचन्दनकुचद्वन्द्वाःकुरंगीदृशः ॥
धारावेश्म सपाटलंविकचितस्रग्दामचन्द्रात्विषोः।
धातः सृष्टिरियं वृथैवे तनवो ग्रीष्मायैऽभविष्यद्यदि ॥16॥
नात्यन्तमद्यं हि पिबेन्निदाघे बहूदकं दोषसमूह शान्त्यै।
कट्वम्लतीक्ष्णांश्च रसान्नसेवताद् व्यायाम तीक्ष्णांशु करांश्चधीरः ॥17॥

महाकवि कालिदास ने कुमारसंभव महाकाव्य में भगवान् शंकर के मुख से—शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम् कहलाकर आयुर्वेद के इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया है—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
सर्वेकार्येष्वन्तरंगं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

निरोग व्यक्तियों पर ही राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल रहता है अतः हमारा कर्तव्य है कि आर्ष प्रणीत ऋतुचर्या विधि का पालन कर अपने-आपको कार्य के लिए सक्षम बनायें। इस ऋतु में बहुत ही सावधानी पूर्वक काम करते हुए हमें वही आचरण करने चाहिए जो आयुर्वेद ने बताए हैं। प्रत्येक बुद्धिमान का कर्तव्य है कि अवसर रहते सचेष्ट हो वही करे—

धीमता तदनुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानुवर्तते

●

वर्षा ऋतु और स्वास्थ्य

वर्षा ऋतु का स्थान ऋतुचर्या में तीसरा माना गया है। यह ऋतु आषाढ, श्रावण (जुलाई, अगस्त) में रहती है। जहाँ यह ऋतु अन्नोत्पादन में सहायक बन मानव के प्राणरक्षक रूप में सामने आती है वहाँ अनेक वातविकारों को उत्पन्न कर मानव को बहुत कष्ट भी देती है। वर्षा के विषय में लिखा है, 'वर्षासु मारुतोदुष्टः' हो सकता है—वर्षा ऋतु का कीचड़, गंदगी, मच्छर आदि कई व्यक्तियों को प्रिय न लगें, पर यदि वे हिंदी-संस्कृत साहित्य का अनुशीलन करें तो उनका मन मयूर वर्षा की मेघध्वनि सुन नृत्य किए बिना न रह सकेगा। हल्की-हल्की फुहारों का आनंद लेने के लिए किसका मन लालायित न होगा। मल्हार की मधुर ध्वनि किस पाषाण हृदय को द्रवित करने में समर्थ न होती होगी ? महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध काव्य 'मेघदूत' का प्रेरणास्रोत यही ऋतु तो है। 'ऋतु संहार' उससे भी अधिक आकर्षक वर्णनकर इसकी मनोहारिता की छाप हृदय पटपर अंकित कर देता है। हिंदी के महाकवि घनानन्द और गोस्वामी तुलसीदास जी भी इसका वर्णन करत अघाए नहीं हैं-

"वर्षाकाल मेघ नभ छाए, गर्जत लागत परम सुहाए।
दामिनी दमक रही घन माहीं, खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं
भूमि परत भा डाबर पानी, जिमि जीवहिं माया लपटानी।

आदि उपदेशप्रद वाक्य भगवान श्रीराम के मुख से गोस्वामी जी ने इसी ऋतु के वर्णन में कहलाए हैं। आयुर्वेद शास्त्र तो क्योंकि (Science of life) है और मानव जीवन के हिताहित की पूर्ण विवेचना करता है, अतः वह भी इसके वर्णन से अछूता नहीं। वर्षाऋतु में हमें किस प्रकार रहना चाहिए, इस विषय में वाग्भटाचार्य जी लिखते हैं—

आदानग्लानवपुषामग्निः सन्नोऽपि सीदति।
वर्षासु दोषैः दृश्यन्ति तेऽम्बुलंवाम्बुदेऽम्बरे ॥
स तुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च।
भूबाष्पेणाम्ल पाकेन मलिनेन च वारिणा ॥
वह्निनैव च मन्देन तेष्वित्यन्योन्य दूषिषु।
भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत् ॥

वर्षा ऋतु में आदान काल होने से अपरिचित धातु वाले शरीर में अग्नि मंद होकर नष्ट हो जाती है। इन दिनों जब आकाश जल पूर्ण वारिधरों से घिरा हुआ होता है, तब वह अग्नि वातादि दोष से दूषित होती है। इस मेघपूर्ण वायु-मंडल में वे वातादि दोष तुषारयुक्त शीतल पवन चलने से, तथा पृथ्वी की दोष युक्त वाष्प से और काल स्वभावज अम्लपाकवाले एवं लूता, कीट, आदि युक्त मलिन जल से मन्दाग्नि के समान ही वातादि दोष भी अधिक दुष्ट हो जाते हैं।

यद्यपि वर्षाकाल में वात का ही प्रकोप होता है, परंतु जल के अम्ल पाक से पित्त का भी वृद्धि जनित कोप होता है, और कफ का क्षयज प्रकोप होता है। इसी बात को लक्ष्य करके 'चरक' में लिखा है—**वर्षा स्वग्निबले हीने कुप्यन्ति पवनादयः** अर्थात् वर्षाकाल में अग्नि का बल हीन होने पर वात, पित्त, कफ तीनों दोष कुपित हो जाते हैं। उन वातादि दोषों के परस्पर दूषित होने पर वर्षा ऋतु में सब साधारण और जठराग्नि को तेज रखने वाले आहार-विहार का सहारा लेना चाहिए। इसके लिए—

आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं रसान् कृतान्।
जांगलं पिशितं यूषान मध्वरिष्टं चिरन्तनम् ॥
मस्तु सौवर्चलाढ्यं वा पञ्चकोलावचूर्णितम्।
दिव्यंकोपं शृतं चाम्भो भोजनं त्वतिदुर्दिने ॥
व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु ॥—वाग्भट

इस समय वमनविरेचनादि से शरीर की शुद्धि करके निरूह वस्ति लें। पुराना अन्न, जंगली पशुओं का मांस, मूंगादि के यूष, पुराना मधु, पुराने अरिष्ट, सौवर्चल (साँचर) नमक, पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) युक्त वस्तुएँ खाएँ। मम्तु (दही का जल) आकाशयीय जल या कूप का उबाल कर ठंडा किया हुआ जल सेवन करें। जिस दिन अति मेघवृष्टि हो उस दिन दाड़िम (अनार) आदि अम्ल रस युक्त, नमकीन और चिकने सूखे पदार्थ और मधुयुक्त पदार्थ तथा हल्के पदार्थ सेवन करें। यद्यपि मधु रूक्ष होने से वात प्रकोप करता है, परंतु इस समय क्योंकि देह की धातुएँ क्लेद युक्त होती हैं, इसलिए मधु की शक्ति क्योंकि इस क्लेद के शोषण में लग जाती हैं इसलिए वात-प्रकोप का भय नहीं रहता। इसी कारण वर्षा में मधु का निषेध नहीं है। इसके अतिरिक्त निम्न बातों को भी पूर्णतया ध्यान में रखना चाहिए।

अपादचारी सुरभिः सततंधूपिताम्बरः।
हर्म्य पृष्ठे वसेद्वाष्प शीत शीकर वर्जिते ॥
नदी जलोदमन्थाहः स्वप्नयासातपांस्त्यजेत् ॥

अर्थात् इस ऋतु में सुगंध लगाकर और सुगंधित धूप से वस्त्रों को धूपित कर पहनना चाहिए। बिना सवारी या नंगे पाँव नहीं फिरना चाहिए। कीच-कीट, काँटे आदि का भय बना रहता है। साथ ही इस समय पक्के मकानों में ऊपर के ऐसे स्थान में निवास करना चाहिए, जिससे पृथ्वी की भाप, शीत और वर्षा की फुहार आदि न लग सके।

वर्षा ऋतु में नदी का जल, जल में बनाया हुआ सत्तू आदि का घोल (उद्मन्थ), दिन में सोना, व्यायाम आदि करना, परिश्रम करना, सूर्य की धूप सहना इन सबका परित्याग कर देना चाहिए।

इसको संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्षा में प्रायः पैदल बाहर न निकलें। कपड़ों को बराबर धूप दिखाते रहें। मकान की छत पर बैठें जहाँ मौसमी वायु और जल के छींटें न आते हों। नदी का जल, पानी में घोला हुआ सत्तू, दिन में सोना और धूप का सेवन कदापि न करें।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि इस ऋतु में वायु का प्रकोप अधिक होता है। अतः वायु-शामक उपाय प्रयोग में लाने चाहिएँ।

वायु शामक सूखे, हल्के, गर्म, घी-तेल की अधिकता वाले नमकीन तथा खट्टे पदार्थों का सेवन इस ऋतु में लाभप्रद है। पत्ती के साग, बथुआ, पालक, चौलाई आदि इस ऋतु में नहीं खाने चाहिए।

इस ऋतु में नदी या तालाब का जल नहीं पीना चाहिए, न उनमें स्नान करना चाहिए। इस समय क्योंकि नदियाँ रजस्वला होती हैं अतः इनका जल किसी काम का नहीं रहता। कुएँ का जल भी यथासंभव यदि औटाकर पीया जाए तो अच्छा है। पीने के लिए 'दिव्य' जल (दिवि-आकाशेभवः दिव्यः) अर्थात् वर्षा का वह जल जो पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ऊपर ही ऊपर ले लिया जाए अच्छा है। यही जल दिव्य जल कहलाता है।

इस ऋतु में आम और दूध का सेवन करना अत्युत्तम है। इस क्रिया को 'आम्र कल्प' कहते हैं। यह मन्दाग्नि और संग्रहणी वालों को भी हजम हो जाता है तथा उपरोक्त रोगों का शमन कर शरीर पुष्ट बनाता है। सेवनीय आम गूदे वाले (कलमी) की अपेक्षा रसदार अधिक श्रेष्ठ माने गए हैं।

भाद्रपद या अगस्त वर्षा ऋतु का प्रधान माह है। इस समय खान-पान पर विशेष ध्यान देना चाहिए। भारी और बासी चीजें बिल्कुल नहीं खानी चाहिए। यथासंभव सायंकाल का भोजन सूर्यास्त से पूर्व कर लेना चाहिए, इससे भोजन में जीवाणु पातका भय नहीं रहता। इन दिनों दही का प्रयोग सर्वथा नहीं करना चाहिए क्योंकि कहावत प्रसिद्ध है—

"सावन साग न भादों दही। क्वार करेलो न कातिक मही ॥"

इस ऋतु में कीचड़, पानी और सील से सदा बचाव रखना चाहिए क्योंकि वात और चर्म रोग प्रायः इन कारणों से ही होते हैं। धूप से भी बचाव रखें परंतु वस्त्रों को बराबर धूप दिखाते रहना चाहिए जिससे रोग जीवाणुओं से तथा वस्त्र में कीड़ा लगने से बचाव रहे। सोने का स्थान खुला-हवादार तथा वर्षा की फुहार आदि उपद्रवों से बचा हुआ होना चाहिए। प्रायः मलेरिया भी इसी ऋतु में होता है, अतः इससे बचाव रखें। घरों के पास गढे आदि न रहने दें। मोरियां आदि साफ रखें। पानी जमा न होने दें। गढों में मिट्टी का तेल डाल आग लगा दें या फ्लिट (Flit) प्रयुक्त करें। घर में धूप-लोबान, गुग्गुल नीम के पत्तों की धूप यदा-कदा देते रहें जिससे मलेरिया के मच्छर उत्पन्न ही न हो पाएँ।

योगराज गुग्गुल, चतुर्मुख रस, वृहत्ध्वातचिंतामणि रस, योगेन्द्र रस, दुर्जलजेता रस, त्रिभुवनकीर्ति रस, गुडूचीसत्व (Paludvin) आदि का सेवन, नारायण तैल की विषगर्भ तेल की मालिश, वातविकार, मलेरिया तथा जल दोष से उत्पन्न रोगों के लिए लाभदायक है।

चर्या-मंजरी में वर्षा ऋतुचर्या का बड़ा आकर्षक वर्णन उपलब्ध होता है।

आदानकाल ग्लानि ग्लपित वपुषां च मनुजानाम्।
सन्नो मुहुरपि सीदति वर्षा सुवाताभिर्वह्निः ॥
युग्मकर्कटयोः राश्योर्यदा भवति संक्रमः।
वर्षास्यादत्र संसेव्यं जलं वस्वंश शेषितम् ॥
मेघाद् वह्नेर्मान्द्यात् अम्लात्पाकाज्जलस्य चाविलतः।
भूवाष्पादपिदोषाः कुप्यन्ति स्पर्शनेन शीतेन ॥
वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादयस्त्रयः।
रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्योपशान्तये ॥
भवेद् वपुषि क्लिन्नत्वं तत्र यस्माद्विशेषतः।
कटुतिक्तकषायाश्च सेव्यास्तस्योपशान्तये ॥
उष्मणो बोधनं सर्वे भजेत्साधारणं सुधीः।
पूर्वं शुद्ध तनूरेक वमनैर्वस्तिमाचरेत् ॥
स्नेह शुण्ठ्यादि रचितान् रसांस्तत्रोपसेवयेत्।
जीर्णं धान्यं च पिशितं जाङ्गलं यूषमेव वा ॥
स्नेहनं मर्दनं तत्र दध्युष्णमभया तथा।
सिन्धूत्थ युक्ता संसेव्या मध्वरिष्टं चिरन्तनम् ॥
पिप्पली-पिप्पलीमूल-चव्य-चित्रकनागरैः।

युतं मस्तुहितं तत्र किंवाऽऽतुमतायुतम् ॥
जलं कौपं शृतं दिव्यं यवगोधूम शालमयः।
माषा उद्वर्तन स्नान गन्धाल्यानि चाभ्यसेत् ॥
आप दचारी सततं शोभः धूपिाम्बरः।
स्थानं भजेत्तथा क्लेदि श शीकर वर्जितम् ॥
व्यक्ताम्ल लवणस्नेहं वात्वर्षा कुलेऽहनि।
विशेष शीते भोक्तव्यं शृ़ं क्षौद्रान्वितं लघु ॥
वृष्टि घर्मं हिमं रूक्षं पूर्वत नदी जले।
मैथुनं च दिवास्वापमुदमः विवर्जयेत् ॥

इस प्रकार आयुर्वेद वर्णित वर्षा ऩुचर्या का पालन करने वाला व्यक्ति अनेक रोगों से ही नहीं अपने आप को बता अपितु अपने धन की हानि को भी रोक लेता है।

प्रत्येक बुद्धिमान प्राणी का कर्तव्य कि वह स्वास्थ्य के प्रति सतत सचेष्ट रहकर, अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो भारतीय जनता का तो यह आवश्यक और अनिवार्य कर्तव्य है कि वह अपने देश्की निर्धनता को परिलक्षित कर विदेशों में औषधि के बहाने जाते हुए धन की ढ़ रोकने के लिए इन स्वर्णिम स्वास्थ्य सूत्रों को जीवन में ढाल अपने स्वास्थ्य कीक्षा कर देश गौरव की वृद्धि करते हुए वही करे जो आयुर्वेद ने बताया है—

धीभतातदनुष्ठेयं स्वास्थ्यंोनानुवर्तते

●

शरद ऋतु और स्वास्थ्य

वर्षा विगत शरद ऋतु आई। लक्ष्मण देखहु परम सुहाई ॥
फूले कांस सकल महिछाई। जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
आदि........

इस प्रकार जहां संस्कृत-हिंदी साहित्य इसकी मनोहरता का वर्णन करता नहीं अघाता वहां आयुर्वेद शरद्ऋतु चर्या द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण के लिए प्रेरित करता है, क्योंकि वह जानता है—

धर्मार्थ काम मोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
सर्व कार्येष्वन्तरंगं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

वाग्भटकार शरद् के चर्या प्रकरण में लिखते हैं—

वर्षा शीतो चिताङ्गानां ससैवार्क रश्मिभिः।
तप्तानां संचितं वृष्टौ पित्तं शरदि कुप्यति ॥

अर्थात् मनुष्य के शरीर में व्याप्त वर्षाकालीन पित्त शरद ऋतु में नवीन सूर्य किरणों से सहसा गर्म हो जाता है और इससे वर्षा में संचित पित्त शरद में कुपित हो उठता है, अतः पित्त की शांति के लिए—

तज्जयाय घृत तिक्तं विरेको रक्तोमोक्षणम्।

सिक्त घृत का पान, विरेचन और रक्त मोचन करना उचित है। यद्यपि पित्त की शांति के लिए लिखा है—

''विरेचनं पित्त हराणाम्' तथापि इसकी शांति और शरीर स्निग्ध करने के लिए नीम, कुटकी, परबल, दारु हल्दी, पाठा, धमासा, शाहतारा, त्रायमाण आदि औषधियों के क्वाथ से सिद्ध तिक्त घृत का प्रयोग लाभप्रद है। जिस प्रकार वसन्त में कफ निवृत्ति के लिए वमन, वर्षा में वायु के लिए निरूह वस्तिका विधान है उसी प्रकार शरद में विरेचन का। भाव यह है कि शरद में पित्त का स्वाभाविक राज्य है और परिणाम स्वरूप तज्जन्य रोग अधिकाधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। वैद्यों को इस ऋतु में विशेष लाभ होता है इस कारण वैद्य समाज के लिए यह ऋतु मातृवत् मानी गई है, यथा—

वैद्यानां शारदी माता, पिता च कुसुमाकरः

इस प्रकार एक ओर पित्त का प्रकोप दूसरी ओर ऋतुचर्या से अपरिचय ये दोनों अनेक रोगों को उत्पन्न कर सकते हैं। अतः आदि तिक्त घृत पान और विरेचनादि का प्रयोग कर पित्त का हरण कर लिया जाए तो इस ऋतु में उत्पन्न होने वाले रोग नहीं होते। इस लिए आगे बताई हुई विधि से पित्त को शीघ्र जीत लेना चाहिए–

तिक्तं स्वादु कषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल्लघु।
शालिमुद्गासिता धात्री पटोल मधुजाङ्गलम् ॥

इस ऋतु में भूख लगने पर तिक्त, मधुर, कषाय रस प्रधान, शीघ्र पचने वाले पदार्थों का सेवन करें। भोजन में शाली (साँठी) चावल, मूँग, चीनी, आँवला, परबल, मधु, जंगली जीवों का मांस सेवन करें।

शरद ऋतु में पीने के योग्य 'हंसोदक' को श्रेष्ठ और अमृत के समान माना गया है क्योंकि यह अनेक आंतरिक उपद्रवों को दूर करने की क्षमता से परिपूर्ण है। इसके विषय में निम्न वर्णन उपलब्ध है–

तप्तं सत्पांशु किरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः।
समंतादप्यहोरात्रमगस्त्योदय निर्विषम् ॥
शुचि हसोदकं नाम निर्मल मलजिज्जजलम्।
नाभिष्यन्दि नवा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम् ॥

अर्थात् जो जल दिन में सूर्य की किरणों से तपायमान हो, और रात्रि को चन्द्रमा की किरणों से शीतल होता हो तथा इस जलाशय के चारों ओर पूरी तरह दिन में सूर्य की किरणें और रात्रि में चन्द्रमा की रश्मियाँ गिरती हों एवं अगस्त्य (नक्षत्र) के उदय होने से ऋतु जनित विष शांत हो चुका हो ऐसे निर्मल पवित्र जल को हंसोदक कहते हैं। यह जल मल हरने वाला, क्लेद रहित (अनभिष्यन्दि) तथा रूक्षतादि दोष रहित होने से पीने आदि कार्यों में अमृत के समान माना गया है।

रामायण में अगस्त्योदय के वर्णन में तुलसीदास जी ने लिखा है–"उदित अगस्त पंथ जल सोषा। निमि लोभहिं सोखें सन्तोषा" पर आयुर्वेद में अगस्त्योदय जल को रोग निवृत्ति कारण माना गया है। इसके साथ ही–

चन्दनोशीर कर्पूर मुक्ता स्रग्वसनोज्ज्वलः।
सौधेषु सौध धवलां चन्द्रिकां रजनीमुखे ॥

शरद ऋतु में चन्दन, खस, कपूर आदि का सेवन, मोती की माला, सुगंधित पुष्पों के हार और श्वेत उज्ज्वल वस्त्रों को धारण करना चाहिए। साथ ही क्योंकि इस ऋतु में चन्द्रमा की किरणों से अमृत वर्षा होती है और वर्षा के बाद आकाश स्वच्छ निर्मल हो जाने से इस अमृत वर्षा को ग्रहण करने के लिए यह ऋतु सर्वोत्तम

है। चन्द्र किरणों की स्निग्धता और गुणकारिता के ही कारण शरद पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्र किरणों का विहार और चाँदनी में रखकर खीर खाना बहुत उत्तम माना गया है। अतः सायंकाल में चन्द्रमा की श्वेत उज्ज्वल चाँदनी को महल आदि पर बैठकर सेवन करें। साथ ही निम्न वस्तुओं का सर्वथा परित्याग करें–

तुषार क्षार साहित्य दधि तैल वसा तपान्
तीक्ष्णमद्य दिवास्वप्न पुरोवातान् परित्यजेत् ॥ वा. सू. 54

ओस की बूँदे, यवक्षार आदि क्षार, पूर्ण भोजन, दही, तेल, वसा, धूप, तेज शराब, दिन का सोना तथा सामने से आने वाली हवा आदि से शरीर की रक्षा करनी चाहिए। चर्या मञ्जरी में शरद ऋतु चर्या का सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है–

मृगेन्द्रे कन्यकायां च सम्प्राप्ते भास्करे शरत्।
जलंचार द्विपोदानं संसेव्यं हितमिच्छता ॥1॥
शीत सात्मी कृताङ्गानां वर्षास्वरूणरश्मिभिः।
तप्तानां निचितमायुः प्रायः शरदि कुप्यति ॥2॥
सर्पिः स्वादु कषाय तिक्तक रसाः यच्छीतलं यल्लघु
क्षीरं स्वच्छसितेक्षवः पटु रसः स्वल्पं पलं जाङ्गलम्।
गोधूमा यव मुद्ग शालि सहिता नादेयमंशूदकम्
चन्द्रश्चन्दन मिन्दुरादि रजनी माल्यं पटोनिर्मलम् ॥3॥
विश्रामः सुहृदां गणेषुमधुरा वाचः सरः क्रीडनम्
पित्तानां च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरामोक्षणम्।
एणालावक पिञ्जलाश्चशरभोरभ्राः शशाः शर्करा।
युक्ता हैमवती धनापगमने पथ्यानि सेव्यं हितम् ॥4॥
दिवाकर करैर्जुष्टं निशाकर करैर्निशि।
अंशूदकं विजानीयादगस्त्योदयनिर्विषम् ॥5॥
तीक्ष्णं दधि हिमंक्षारं व्यायामाम्लेन्द वायवः।
कटूष्णतैल सौहित्य दिवास्वाप वसांस्त्यजेत् ॥6॥

इस प्रकार आयुर्वेदोक्त शरद् ऋतु के नियमों का पालन करना मानव मात्र के लिए परमावश्यक है। विशेषकर निर्धन भारत के उन स्वास्थ्य कामियों को इस ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिए, क्योंकि भारतीय तत्ववेत्ता आचार्यों ने भारत की स्थिति-काल आदि का विचार कर ऐसे सूत्रों का निर्माण किया है–"हींग लगे ना फिटकरी रंग चोखा ही चोखा" इसलिए भारतीय को **यस्य देशस्य योजन्तु तज्जन्य औषधंहितम्** को ध्यान में रख, इन स्वास्थ्य रक्षक सूत्रों को ही औषध रूप में आत्मसात् कर अपना स्वास्थ्य सुंदर और भविष्य उज्ज्वल बना लेना चाहिए इस

ऋतु में विशेषकर मधुर तिक्त कषाय रस का सेवन करना चाहिए। मसहरी के भीतर या भली प्रकार वस्त्र लपेटकर सोना चाहिए। कटु तैल (सरसों का तेल) की मालिश करनी चाहिए। प्रतिदिन एक नीबू गरम जल में निचोड़कर पीना तथा मधु का व्यवहार करना भी उत्तम है। विरेचन के लिए इच्छाभेदी रस, मधुयष्ठयादि चूर्ण, पित्तशांति के लिए मुक्ता पिष्टी चन्द्र पुटित प्रवाल भस्म, कामदूघा रस आदि का सेवन अच्छा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ हिंदी संस्कृत साहित्य ने शरद् वर्णन द्वारा मानव मन को परितुष्ट करने का प्रयत्न किया वहां आयुर्वेद ने मानव मात्र को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहने की प्रेरणा दी और बताया–

धीमता तदनुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानुवर्तते

●

हेमन्त ऋतु और स्वास्थ्य

भारतीय तत्ववेत्ता मनीषियों ने हरसंभव प्रयत्न द्वारा मानव मात्र को सुखी बनाने का पूर्ण प्रयास किया है। आज जहाँ विश्व में अनेक वैज्ञानिक आविष्कार मानव मन को चमत्कृत करते और दूसरे ही क्षण नैराश्य समुद्र में आप्लावित करते दृष्टिगोचर होते हैं, वहाँ हमारे मनीषी आचार्यों द्वारा निर्मित प्रत्येक सिद्धांत आज भी उतना ही नवीन और कार्यकर है जितना हजारों वर्ष पूर्व था। आज एक रोग की किसी औषधि का अभी एक वैज्ञानिक आविष्कार करता है, दूसरे क्षण वही औषधि और सिद्धांत ध्वस्त होते दिखाइ देते हैं। इतना ही नहीं उन भारतीयों को जो प्रत्येक वस्तु ओर विषय में पश्चिम का अनुसरण करते हैं और अपने देश और देशीयता तथा देशी सिद्धांतों को थोथी बातें कहने में जरा भी संकोच का अनुभव नहीं करते, उन्हें चाहिए कि वे पश्चिम के सुप्रसिद्ध विद्वान Shakespeare (शेक्सपीयर) के विचार जो उसने विज्ञान और पश्चिमी वैज्ञानिकों के लिए व्यक्त किए हैं। जान लें–Go, wonderous creature ! where science guides, Go, teach external wisdom, how to rule. And drope in thyself be a fool."

इसके विपरीत हमारे आचार्यों ने हमारे लिए ऐसे सिद्धांतों का निर्माण किया है जिसका पालन कर हम सदा नीरोग ओर सुखी रह सकते हैं। ऋतुचर्या का अभिप्राय भी स्वास्थ्य की प्राप्ति कराना ही है इसीलिए वाग्भट्ट में सूत्र स्थान अध्याय 3 में हेमन्त ऋतु की चर्या का सुंदर और हितकारी वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं बिना स्वास्थ्य के परिज्ञान के वैद्य भी किसी काम का नहीं यह विचार कर लिखा है।

सुश्रुतं न श्रुतो येन वाग्भटोनैव वाग्भटः।
नाधीतश्चरको येन स वैद्यो यमकिंकरः ॥

इस प्रकार हेमन्त ऋतु के विषय में लिखा है–

बलिनः शीत संशोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनलः।
भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः।
अतो हिमेऽस्मिन्सेवेत स्वादद्मल्लवणान्रसान् ॥

अर्थात् हेमन्त ऋतु मार्गशीर्ष पोष (नवम्बर-दिसम्बर) में होती है इस ऋतु में प्राणियों के बल का संचय होता है—हेमन्त ऋतु में शीत अधिक पड़ता है। शीताधिक्य के कारण बलवान पुरुष के शरीर से उष्मा बाहर नहीं निकल पाती, अतः जेठराग्नि प्रवल हो जाती है और थोड़ी ईंधन वाली होकर वायु के द्वारा प्रेरित होने पर रस रक्त आदि धातुओं को दहन (परिपाक) करने लगती है। इसलिए इस समय मधुर अम्ल और लवण रसों का विशेष सेवन करना चाहिए और—

दैर्घ्या निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः।
अवश्य कार्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ॥

हेमन्त की रात लंबी होने से प्रातःकाल ही भूख प्रतीत होती है। यदि भूख लगने पर तुरंत कुछ न खाया जाए तो जठराग्नि धातुओं को जलाने लगती है और मनुष्य दुर्बल तथा अस्वस्थ हो जाता है। इस लिए शीतकाल में प्रातःकाल आवश्यक कृत्यों से निवृत्त हो प्रातःकाल ही उष्ण स्निग्ध और मधुर पदार्थों का सेवन करें तो शरीर स्वस्थ व बलवान रहता है। जठराग्नि बलवती होने से मधुर स्निग्ध द्रव्य को ठीक रीति से पचा शरीर को पुष्ट करती है, इसलिए मोदकादि मधुरस्निग्ध पदार्थों का सेवन करना आवश्यक है। साथ ही इस ऋतु में—

वातघ्नतैलैरभ्यङ्गं मूर्ध्नि तैलं विमर्दनम्।
नियुद्धं कुशलैः सार्धं पादाघातं च युक्तितः ॥

वातनाशक (सरसों वातान्तक, नारायणादि) तैलों की मालिश करना, मस्तक पर तेल लगाना (रगड़वाना) पहलवानों से कुश्ती तथा पदाघात आदि व्यायाम करने चाहिएँ। व्यायाम के नियमानुसार अपनी आधी शक्ति तक ही व्यायाम करना उचित है। इससे शरीर का गठन, बल की वृद्धि, युद्ध-चातुरी और स्फूर्ति आदि आती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मानव को अपनी शक्ति और सुविधानुसार व्यायाम करना चाहिए इसके पश्चात—

कषायपहत स्नेह स्ततः स्नातो यथा विधि।
कुङ्कुमेन सदर्पेण प्रदिग्धोऽगुरुधूपितः ॥

किसी कषाय उबटन आदि से शरीर की चिकनाई दूर कर विधि पूर्वक स्नान करें। भाव यह है कि मालिश में लगे ऊपरी तेलों को बिल्कुल दूर कर दिया जाए जिससे वस्त्र गंदे न हों। इसके बाद केशर कस्तूरी आदि का मस्तकादि अंगों पर लेप करें। अगर आदि का धूम स्वयं ग्रहण करें और घर को सुगंधित करें जिससे रोग-जीवाणु, मच्छर आदि का विनाश हो। गृहान्तरित वायु पवित्र हो वहाँ के वातावरण को रुचिकर बना दें। केशर कस्तूरी के लेप द्वारा शीत से होने वाला वायु प्रकोप शांत रहता है। स्नानादि के पश्चात यथावत भोजन करें—

रसान् स्निग्धान पलं पुष्टं गौड़ मच्छसुरां सुराम्।
गोधूमपिष्ट माषेक्षु क्षीरोत्थ विकृतीः शुभाः ॥
नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्ये सुखोदकम् ॥

अर्थात् स्नान के पश्चात् स्निग्ध हलुवा लड्डू आदि स्निग्धरस, नीरोग पुष्ट जीवों के उचित मांस, गुड़ की शराब या अच्छी शराब, गेहूँ के आटे, उड़द, ईख दूध आदि से बने पूड़े, कलाकन्द, हलुवा आदि पदार्थ, नवीन अन्न, चर्बी, तैल आदि का सेवन लाभदायक है। स्नान, तथा हाथ आदि धोने के लिए सुखोष्णोदक का प्रयोग उचित और लाभप्रद है।

भोजन के विषय में थोड़ा और ध्यान देने की आवश्यकता है और वह है कार्तिक सुदी अष्टमी से मार्गशीर्ष बदी अष्टमी तक के (30 अक्टूबर से 15 नवम्बर) समय को यमदंष्ट्रा कहते हैं। इन 15 दिनों में शीघ्र भोजन करना चाहिए। यह आयुर्वेद की आज्ञा है। इस यमदंष्ट्रा के आठ दिन पूर्व दीपावली पड़ती है और साधारणतया इस महोत्सव पर खूब मिठाइयाँ और गरिष्ठ पदार्थों का सेवन किया जाता है, जिससे प्रायः अजीर्ण हो जाता है—और इस अजीर्ण को पचाने के लिए **अजीर्णे भोजनं विषम्** के अनुसार यमदंष्ट्रा का नाम देकर अल्पाहार (कम भोजन करने की) व्यवस्था की गई है। इसके पश्चात ही पौष्टिक औषधियों और गरिष्ठ पदार्थों का सेवन करना चाहिए क्योंकि इस समय सर्दी खूब पड़ने लग जाती है। वास्तव में वार्षिक शक्ति संग्रह का उचित काल है इस मास (मार्ग शीर्ष) की महत्ता इससे ही स्पष्ट हो जाती है कि भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में इसके लिए—**मासानां मार्गशीर्षोऽहम्** का प्रयोग किया है। अतः स्वास्थ्य कामी को भूलकर भी यह अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए।

इसके साथ ही शीत की निवृत्ति के लिए—
प्रवाराजिनकौशेय प्रवेणीकोचवास्तृतम्।
उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ॥

अर्थात् शीत की निवृत्ति के लिए प्रावार-रोमयुक्त मोटा वस्त्र (गुदना) मृगचर्म रेशमी वस्त्रों के गदैले, रजाई, कम्बल आदि नरम और गर्म स्वभाव के वस्त्रों से युक्त शय्या पर कोमल गर्म रजाई आदि लपेटकर शयन करना चाहिए एवं प्रातःकाल—

युक्त्याऽर्क किरणान्स्वेदं पादत्राणे च सर्वदा

पीठ की ओर से सूर्य किरणों का सेवन करे, स्वेद लें। (Steam Bath) सदा जुराब आदि पादत्राण पहन रहें। बिना जूता पहने बाहर न निकलें। सूर्य का सेवन पीठ द्वारा और अग्नि का सन्मुख रखकर सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त

यौवन मद से ऊष्ण चन्दनादि से लिप्त पुष्ट प्रिय ललनाओं का सहयोग भी शीत निवृत्ति में सहायक होता है।

पीवरोरु स्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः।
हरन्तिशीतमुष्णाङ्ग्यो धूपकुंकुमयौवनैः ॥

इसी भाव से युक्त एक श्लोक लोलिम्बराजकृत 'वैद्य जीवनम्' में उपलब्ध होता है—

श्रीखण्ड मण्डित कलेवर वल्लरीणाम्,
मुक्ताफलाकुल विशाल कुचस्थलीनाम्।
वैदग्ध्यमुग्धवचसां सुविलासिनीनाम्,
आलिङ्गनं सकलदाहमपा करोति—

इसके अतिरिक्त शीतरक्षा के लिए निम्न उपाय काम में लाएं—

अङ्गारताप संतप्त गर्भभू वेश्मचारिण।
शीतपारुष्यजनितो न दोषोजातु जायते ॥

अंगीठी आदि से गर्म किए हुए कमरों में रहना, तलघर और निर्वात कमरों का सेवन भी शीत की कठोरता से उत्पन्न होने वाले दोषों को उत्पन्न नहीं होने देता। इन्हीं भावों पर आधारित हेमन्त ऋतु का सुंदर वर्णन चर्यामञ्जरी में बड़े ही आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है।

तुषारे शीत संरुद्धो बलिनाह्यग्नि वायुना।
प्रेरितोल्पेन्धनोपक्ता धातूनां स भवेद् वली ॥1॥
तुला वृश्चिकयोः राश्योर्हेमन्तः स्याद्धि संक्रमे।
पथ्या शुण्ठी युता पथ्या जलं पादावशेषितम् ॥2॥
शुचीनामत्र हेमन्ते स्वाद्वम्ल लवणान् रसान्।
औदकानूप मांसनां स्निग्धांश्चैवोपसेवयेत् ॥3॥
रात्रीणां दैर्ध्यतः कल्पे क्षुधया पीड़ितः सुधीः।
आवश्यकं विनिर्वर्त्त्याभ्यङ्ग तैलने चाचरेत् ॥4॥
मूर्ध्नि तैलं विमर्द्याथ दक्षै व्यायाममाचरेत्।
पादाघात कृतः स्नेहहृतः स्नातः प्रधूपितः ॥5॥
अनार्य्यकेनदिग्धांगो कन्दर्प धीरादिभिः पुमान्।
गौड़ी सुरां सुरामण्डं सुरां सेवेद्यथाविधिः ॥6॥
वसां तैलं नवान्नेक्षु क्षीरोत्थ विकृतिस्तथा।
गोधूम माष पिष्टानि पथ्यान्याहुस्तुषारके ॥7॥
सुखमुष्णोदकं सेव्यं नरः प्राप्नोति शास्वतम्।

कान्तिमायुः प्रजां प्रज्ञां सुवर्णं लघुतां पुनः ॥8॥
क्रौंचवं च प्रवेणी च कौशेयं वसनं तथा।
प्रावारमजिनं चैव ना संसेव्य न सीदति ॥9॥
उष्ण स्वभावैर्लघुभिः प्रावृतं शयनं भजेत्।
युक्त्यार्क किरणान्स्वेदान् पादत्राणं च सर्वदा ॥10॥
संकोच धूपित कलेवरवल्लरीणा—
मत्यन्त पीवर नितम्ब कुच स्थलीनाम्।
वामोरु वर्द्धित मदोद्धत यौवनाना—
माश्लेषणं सकल शीतमपा करोति ॥11॥
मदाप्लुता घूर्णित नेत्र नारी
संश्लेषतो दूरमियन्ति शीताः।
सम्मर्दतो नैव कफ प्रकोपो
व्यायाम तो रहति निश्चय वातवेगः ॥12॥
यथा यथा सुन्दर कामिनीनां
कपोल पालीमभिसंसृजन्ति।
तथा तथा काम कृपा कटाक्षा—
न्नश्यन्ति रोगाः कफ वातजोत्था ॥13॥
कृशानु ताप संतप्त मध्य भू वेश्मचारिणाम्।
न कदाचिद् भवेद्दोषः शीत पारुष्य सम्भवः ॥14॥
वीर्य्यतः शीतलं यच्च लघुवस्त्रादिकं तथा।
दिवास्वापं च ना देयं जलं वर्ज्यं विशेषतः ॥15॥

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि हेमन्त में सरदी काफी पड़ने लगती है। गर्मी और वर्षा में पेट की पाचक अग्नि मंद पड़ जाती है, परंतु इन दिनों ठंडी हवा लगने से वह प्रबल हो जाती है। बाहरी ठंड से इस ऋतु में शरीर के रोमरन्ध्र बंद रहते हैं, इसलिए भीतरी गर्मी बाहर नहीं निकल पाती और वह भीतर पाचकाग्नि को प्रज्वलित कर देती है। सूर्य और चन्द्रमा के भाव से भी प्राणियों का बल रखती है। वसंत और शरद में मध्यम, ग्रीष्म वर्षा में सबसे कम और जाड़े में अर्थात् नवम्बर से फरवरी तक सर्वोत्तम रहता है, अतः इन चार महीनों में पौष्टिक पदार्थों का सेवन तथा व्यायाम के द्वारा स्वास्थ्य बना लेना चाहिए।

अन्य ऋतुओं में नया अन्न खाने का निषेध किया गया है, परंतु इस ऋतु में शरीर की पुष्टि के लिए नया अन्न खाना चाहिए। नए चावलों की खीर, उड़द की बनी चीजें, मैदे आदि के पकवान, गोंद के लड्डू, सूरण (जिमिकंद) आदि का शाक

सुगंधित आयुर्वेदीय च्यवनप्राशादि अवलेह, मोदक, वादामपाक, कौंचपाक, मूसलीपाक आदि का सेवन करें द्राक्षासव, वंगभस्म, लोह भस्म, वसंत कुसुमाकर रस आदि का प्रयोग वर्ष भर के लिए शक्ति का संग्रह कर शरीर को इस उक्ति के दायरे से बाहर कर देता है–

शारीरम् व्याधि मन्दिरम्

इसके अतिरिक्त इस ऋतु में प्रमेह रोगियों को प्रमेहनाशक दवाएँ, श्वास नाशक दवाएँ तथा साधारणतया प्रत्येक नीरोग व्यक्ति को भी पौष्टिक रसायन सेवन कर के स्वास्थ्य बना लेना चाहिए।

साधारणतया मधुर, अम्ल लवण रस का सेवन, वातनाशक सरसों आदि के तेल की मालिश व्यायाम, सुखोष्ण जल का प्रयोग पादत्राण का प्रयोग निर्वातस्थान आदि का सेवन उचित है। ओस में घूमना, नंगे पाँव रहना, प्रातराश न करना दिन में सोना आदि निषिद्ध है।

शरद पूर्णिमा को श्वास रोगियों को विशेष कर औषधि क्यों दी जाती है इसका उत्तर पूर्व अनुच्छेद में दे दिया गया है।

इस प्रकार ऋतुचर्या का पालन कर अपने इह लोक और परलोक के मूल कारण स्वास्थ्य को सुदृढ़ बना सुखी और प्रसन्नता पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए और हरसंभव प्रयत्न और उपाय द्वारा अपने स्वास्थ्य की रक्षा सचेष्ट होकर करें और वहीं करें–

धीमता तदनुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानुवर्तते

शिशिर ऋतु और स्वास्थ्य

जिस प्रकार भारत विश्व की सभ्यता और संस्कृति का प्रेरक ही नहीं आधार या स्रोत भी माना गया है, उसी प्रकार विश्व की विभिन्न पद्धतियों का आयुर्वेद प्रणेता ही नहीं मूल स्रोत ही है। साथ ही उनसे कुछ विशिष्टपूर्ण भी है। दूसरी विभिन्न पद्धतियाँ केवल Science of Medicine हैं, पर आयुर्वेद तो जीवन का विज्ञान Scinece of Life है। इसी कारण मानव हित का कोई अंग इससे अछूता नहीं।

ऋतु के अनुकूल आहारदि का सेवन मानव हित के लिए परिलक्षित कर महर्षियों ने इसका सुंदर वर्णन किया है। वाग्भट-सूत्र स्थान तृतीय अध्याय में शिशिर ऋतु का वर्णन निम्न रूप में उपलब्ध होता है।

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड्ऋतवः स्मृताः।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मवर्षा शरद्धिमाः ॥1॥
शिशिराद्यैस्त्रिभिस्तैस्तु विद्यादयनमुत्तरम्।
आदानं च तदादत्ते नृणां प्रतिदिनं बलम् ॥2॥
तस्मिन् ह्यत्यर्थतीक्ष्णोष्ण रूक्षा मार्ग स्वभावतः।
आदित्य पवना सौम्यान् क्षपयन्ति गुणान्भुवः ॥3॥
तिक्तः कषायः कटुको बलिनोऽत्र रसाः क्रमात्।
तस्मादादान माहोपम् ॥4॥

अर्थात् माघ मास से आरंभ करके दो-दो मासों को मिलाने पर क्रमशः शिशिर, वसंत, ग्रीष्म आदि छः ऋतुएँ होती हैं। शिशिर, वसंत और ग्रीष्म इन तीन ऋतुओं में सूर्य उत्तरायण रहते हैं। उत्तरायण में सूर्य का बल बढ़ा हुआ रहता है। वायु इस काल में बेगवान् और अति रूक्ष रहता है। अतः जीव-जंतु और वनस्पतियों के स्नेहांश का शोषण करता है। सूर्य अपनी रश्मियों से विश्व के स्नेहांश को प्रहण करते हैं। आदान (ग्रहण-शोषण) करने वाला होने से उत्तरायण (शिशिर, वसंत) ग्रीष्म के समुदाय को। आदानकाल भी कहा जाता है। इस काल में सूर्य मनुष्य का बल ग्रहण कर उसे दुर्बल बना देता है। आयुर्वेद के उद्गाता

महर्षियों ने मानव शरीर पर इन ऋतुओं के प्रभावानुकूल आहार विहार का निर्देश किया हैं इस काल में तिक्त, कषाय और कटु ये तीन रस क्रमानुसार बलवान हो जाते हैं, मधुर, अम्ल, लवण ये तीनों रस क्षीण हो जाते हैं, इसीलिए आदान काल को अग्नि गुण भूयष्ठि होने से 'आग्नेय' संज्ञा दी है। महर्षि अत्रि ने शिशिर ऋतु के विषय में लिखा है–

अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः।
तदाहिशीतमधिकम् रौक्ष्यं चादान कालजम् ॥1॥–वाग्भट सू॰ अ॰ 3।

अर्थात् क्योंकि शिशिर ऋतु में सर्दी अधिक पड़ती है तथा इस समय अम्ल लवण और मधुर रसों की प्रधानता होती है एवं आदानकाल जनित रूक्षता भी रहती है। अतः महर्षि के कथन और आयुर्वेद के मतानुसार मनुष्य को शिशिर ऋतु में हेमन्त ऋतु के आहार-विहार का सेवन करना चाहिए।

इस ऋतु में जठराग्नि प्रबल होती है जिसका कारण संचय है। यदि उचित आहार का सेवन न किया जाए तो जठराग्नि वायु से प्रेरित हो रसादि धातुओं को दग्ध करने लगती है। इस ऋतु में मधुरादि रस मय पदार्थों का ही सेवन करना श्रेयष्कर है। इस ऋतु में प्रातःकाल ही प्रातराश लेना चाहिए–

दैर्ध्यान्निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः।
अवश्यकार्यंसंभाव्य यथोक्त शीलमेदनु ॥

निशा के लंबी होने के कारण प्रातः ही भूख लग जाती है, अतः प्रातःकाल दैनिककृत्य एवं व्यायाम आदि से निवृत्त हो मधुर और स्निग्ध पदार्थ का सेवन करना चाहिए। इससे शरीर बलवान होता है। जठराग्नि बलवती होने से मधुर, स्निग्ध द्रव्य को भली-भांति पचाकर शरीर को विशेष पुष्ट करती है, अतः इस ऋतु में मधुर-स्निग्ध द्रव्यों का यथाविधि सेवन करना परमावश्यक है।

इस ऋतु में व्यायाम (कुश्ती आदि) एवं वातघ्न तैलों की मालिश करना भी परमाश्यक माना गया है।

"वातघ्न तैलैरभ्यङ्गं मूर्ध्नि तैल विमर्दनम्।
नियुद्धं कुशलै सार्धं पादाघातं च युक्तिः ॥10॥–वाग्भट सू॰

अर्थात् वातघ्न तेलों की मालिश, सर की मालिश और कुशल व्यक्तियों के साथ युक्तिपूर्वक पादाघात, कुश्ती करना मानव के लिए हितकर है।

इसके बाद किसी कषाय उबटन या साबुन आदि से शरीर की चिकनाई दूर कर गुनगुने जल से स्नान करना चाहिए। स्नान के पश्चात केशर, कस्तूरी आदि का मस्तक आदि अंगों पर लेप और अगर आदि की धूप लेना हितकर कहा गया है, यथा–

कषायापहृतस्नेह स्ततः स्नातो यथा विधि।
कुङ्कुंभेन सदर्पेण प्रदिग्धोऽगुरु धूपितः ॥11॥

स्नान के पश्चात मधुर, स्निग्ध, मैदा, माष (उड़द) के बने पदार्थ, दुग्ध पदार्थ इक्षु पदार्थ, नया अन्न, चर्बी, तेल आदि द्रव्यों का सेवन तथा हाथ धोने के लिए गुनगुना जल प्रयोग में लाएं। यथा–

रसान् स्निग्धान् पलं पुष्टं गौड़ मच्छ सुरां सुराम।
गोधूम पिष्ट माषेक्षु क्षीरोत्य विकृतिः शुभाः।
नवमन्नम् वसातैलम्, शौचकार्ये सुखोदकम् ॥12॥

इस ऋतु में ऊनी मोटे गर्म वस्त्र पहनना-ओढ़ना तथा जूते, मोजे धारण करना, सूर्य रश्मियों का पृष्ट भाग की ओर से सेवन करना, अंगीठी आदि से गर्म किए गए कमरों में निवास करना जिससे शीत की कठोरता से होने वाले दोषों को उत्पन्न होने से रोका जा सके आदि का यथाविधि सेवन करना चाहिए। इसके साथ ही–

पीबरोरुस्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः।
हरंति शीतमुष्णाङ्योधूप कुङ्कुम योवनैः ॥15॥

अर्थात् शास्त्र वर्णित प्रमदाओं का सेवन करना चाहिए।

चर्चा मञ्जरी में शिशिर ऋतु का बड़ा हृदयहारी वर्णन दिया गया है–

"शिशिरः संक्रमे प्रोक्तो धन्वि मकरायोस्तथा।
कणायुताभया तत्र जलञ्चार्द्धावशेषितम् ॥
हेमन्तोक्त विधि सर्वः शिशिरेऽल्पं विशेषणम्।
मेघ मारुतजं शीतं रौक्ष्यमादान कालजम् ॥
उष्णाधिकं गृहं तत्र सेव्यं वात विवर्जितम्।
समदा प्रमदाः सेव्या नरेण सुखमिच्छता ॥
द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वे,
वह्निर्ज्वलत्युपरि तूल पटो गरीयान्।
अङ्गानुकूलमनुरागवशा कलत्र-
मित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥
तपनस्तपतिस्म मंद मंदं
ज्वलनोपिज्वलतिस्मकिंचिदेव।
शरणं शिशिरेथ किंच
युनां युवतीना स्तन युग्ममात्रमासीत् ॥
अस्मिनवलषति शीते सततम् सेव्यस्तकार समुदायः।

तैलम्, तूलम्, तल्पम्, तरुण वधु तनूनपात्तरणिः ॥
रसांस्तिक्त कषायश्च भुंजीतात्र समाहितः।
वर्जयेदत्र कटुकं बातलं शीतलं लघु ॥

भाव उपरोक्त ही हैं। वास्तव में यह ऋतु स्वास्थ्य के लिए एक ईश्वरीय देन है। हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सचेष्ट रहकर अपने स्वास्थ्य और शरीर का रक्षण करें क्योंकि–

धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् शरीरं साधनं यतः।
सर्वे कार्येष्वन्तरगं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

महाकवि कालीदास ने भी कुमारसम्भव में भगवान शिव द्वारा उमा को तपस्या से विरत करने के लिए यही कहा है–

शरीरमाद्यम् खुल धर्म साधनम्

आयुर्वेद के मतानुसार शरीर की पुष्टि पर ही रोग क्षमता का सिद्धांत निर्भर रहता है। साथ ही मुर्दे की-सी स्थिति के व्यक्ति किसी राष्ट्र के गौरव को समुज्ज्वल नहीं कर सकते। अतः यह सब विचार कर हर मानव का कर्तव्य है कि सावधानी पूर्वक शास्त्र वर्णित यह ऋतु चर्या विधि का पालन कर स्वयं को मजबूत और सब कार्य करने में समर्थ बनाएँ। समय पर सावधान हो जाना ही बुद्धिमत्ता है अन्यथा "अब पछताए होते क्या जब चिड़िया चुग गई खेत" हाथ मलने से बाद में कोई लाभ न होगा। अतः पहले से ही यदि आयुर्वेद की इस उक्ति की ओर ध्यान देंगे तो सदा लाभ में ही रहेंगे–

धीमता तद्नुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानुवर्तते

●

भोजन और स्वास्थ्य

मनुष्य का स्वास्थ्य अधिकतर आहार पर निर्भर रहता है, इसीलिए नचिकेता को पूर्वकाल में--**अन्न ज्योतिरयं पुरुषः** आदि तत्परक वाक्य भोज्य पदार्थों के समर्थन में कहने पड़े थे। धनी हो या निर्धन दोनों के सामने आहार कर प्रश्न भिन्न-भिन्न रूप में या किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। आहार कितना और कैसा हो यह समस्या सबके सामने है ? भोजन द्वारा ही व्यक्ति शक्ति प्राप्त करता और स्वस्थ रह सकता है। मुख्य रूप से आहार का मनुष्य के शरीर में प्रयोजन दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहला मांसपेशियों और हड्डियों को बनाना दूसरा मनुष्य को शक्ति प्रदान करना जिससे वह अपना कार्य कर सके।

मनुष्य के आहार में विभिन्न खाद्य पदार्थ रहते हैं और सभी खाद्य पदार्थों में निम्नलिखित वस्तुएँ विभिन्न मात्रा में रहती हैं–

1. प्रोटीन (Protein)
2. वसा (Fats)
3. कार्बोज (Carbohydrates)
4. खनिज लवण (Minersalts)
5. खाद्यौज (Vitamins)।

प्रोटीन

खाद्य पदार्थों में नाइट्रोजन (Nitrogen) वाले यौगिकों को प्रोटीन कहते हैं। मनुष्य के शरीर में प्रोटीन के दो कार्य हैं। प्रथम–यह मांसपेशियों को स्वस्थ रखता है। दूसरा कार्य इसकी सहायता से शरीर द्वारा संपादित होता है और यह है शारीरिक तत्वों का निर्माण, अर्थात् शरीर इस पदार्थ को शारीरिक तत्वों के बनाने में काम में लाता है। यों तो प्रत्येक खाने की वस्तु में प्रोटीन की विद्यमानता है पर मात्रा भिन्न-भिन्न पदार्थों में न्यूनाधिक हो जाती है। साधारणतः पशुओं से प्राप्त खाद्य पदार्थों में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। पर इसका भाव यह नहीं कि

दूध के अतिरिक्त मांस खाना भी आवश्यक है। दाल और सोयाबीन की थोड़ी ही मात्रा से पर्याप्त प्रोटीन प्राप्त हो सकता है। महात्मा गांधी ने अपने स्वास्थ्य साधन नामक लेख में स्पष्ट किया है कि एक सेर मांस से अधिक गर्मी और प्रोटीन एक सेर दाल से प्राप्त हो सकती हैं। साधारणतया भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न अनुपात से प्रोटीन आवश्यक हैं। साधारणतया बालक को 2 वर्ष से 17 वर्ष की आयु तक 40 से 80 ग्राम प्रोटीन चाहिए और 18 से 70 तक 65 ग्राम स्त्री और अन्य आयुवालों में इसका अनुपात घट-बढ़ सकता है। वृद्धिकाल में (10-17 तक) मनुष्य को प्रोटीन अधिक मात्रा में दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त भोजन में पर्याप्त भाग प्रोटीन का हो इसका ध्यान रखना चाहिए।

वसा

यह भी भोजन की एक मुख्य वस्तु है। साधारणतया चर्बी, तेल, घी आदि को सामूहिक रूप से वसा कहते हैं। वसा से शरीर में तीन लाभ होते हैं—(1) यह शरीर की मांसपेशियों को कमजोर नहीं होने देती। (2) शरीर में ताप पैदा करती है। (3) संगठित शक्ति का रूप बनाती तथा संचालन-कार्य में सहायता देती है। वसा भोजन में अवश्य होनी चाहिए। शारीरिक परिश्रम करने वालों के लिए तो यह बहुत ही आवश्यक है।

कार्बोज

यह खाद्य पदार्थों का एक प्रधान अंश है। कार्बोहाइड्रेट हमारे शरीर को शक्ति और ताप देते हैं। प्रोटीन और वसा के पाचन में सहायता देते हैं। कार्बोज—हरि तरकारी, चीनी, गुड़, शहद, सूखे फल, चावल, गेहूँ, दालें आदि में पर्याप्त मात्रा में रहता है। इसी कारण इस तत्व को आसानी से हर आदमी खा सकता है। भारत में इस तत्व का उपयोग अधिकता से होता है। यदि यह तत्व अधिक मात्रा में शरीर में पहुँच जाए तो मनुष्य को पेट की बीमारियाँ हो सकती हैं (डॉ. ओंकारनाथ परती)। शारीरिक परिश्रम करने वालों को कार्बोज अधिक मात्रा में और मानसिक परिश्रम करने वालों को कम मात्रा में प्रयुक्त करना चाहिए। मिठाइयों में साधारणतया कार्बोज की मात्रा अधिक होती है। अतः मिठाई खाने में विशेष ध्यान अपेक्षित है।

खनिज लवण

स्वास्थ्य के लिए भोजन में थोड़ी-सी मात्रा में इसका रहना अत्यावश्यक है।

यों तो भोज्य पदार्थों में कई खनिज लवण होते हैं किंतु इनमें मुख्य अग्रलिखित हैं—

(अ) कैल्शियम—यह हड्डी बनाता और दाँत मजबूत करता है। इसकी कमी से हड्डियों में दुर्बलता आ जाती है। बच्चों के भोजन में कैलशियम की बहुत महत्ता है। गर्भावस्था और दूध पिलाने के दिनों में इसकी अधिक आवश्यकता होती है। कुछ डॉक्टरों के मतानुसार एक युवक को प्रतिदिन 0.68 ग्राम कैल्शियम की आवश्यकता होती है और बालक को 1.0 ग्राम कैल्शियम की (डॉ. ओंकारनाथ परती) कैल्शियम, दूध, पनीर तथा पत्ती के साग में अधिकता से उपलब्ध होता है।

(ब) फासफोरस—यह भी अस्थि-निर्माण और उसे मजबूत बनाने में सहायक होता है। डॉक्टरों ने बताया है कि मनुष्य को 1 ग्राम से अधिक फासफोरस प्रतिदिन खाना चाहिए। यह कच्चे अनाज, दूध, अण्डा, सोयाबीन, दाल, हरी तरकारी में उपलब्ध होता है।

(द) लौह—शरीर में शुद्ध रक्त बनने के लिए भोजन में लोहे का रहना परमावश्यक है। रुधिर की रक्तता इसी के कारण होती है। यह मांस, दाल, प्याज, हरा शाक, टमाटर आदि में होता है। गर्भावस्था में इन लवणयुक्त पदार्थों की भोजन में विशेष आवश्यकता होती है।

(स) आयोडीन—इसकी बहुत थोड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है। इसकी कमी से गलगण्ड रोग हो जाता है। यह वसा और कैल्शियम के पाचन में सहायता देता है। यह मछली का तेल, हरा शाक तथा फलों में विशेष रूप से होता है। इन लवणों के अतिरिक्त सोडियम और पोटाशियम लवण भी भोजन में आवश्यक हैं। पौटेशियम दूध, फल, हरे शाक में पर्याप्त मात्रा में होता है। सोडियम साधारण नमक के रूप में हमारे शरीर में पहुँचता है। उक्त लवण स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

खाद्यौज

मनुष्य के भोज्य पदार्थों में कुछ विशेष पदार्थ बहुत कम मात्रा में होते हैं जिनकी उपयोगिता स्वास्थ्य के लिए सर्वाधिक है। इन्हें खाद्यौज (Vitamin) कहते हैं। इनको वैज्ञानिकों ने ए., बी. सी. डी. आदि भागों में बाँटा है। इस तत्त्व की उत्पत्ति सूर्य की रश्मियों के सहयोग से मानी जाती है। विशेषकर इसे दो भागों में बाँटा गया है। (1) तेल या वसा में घुलने वाले, (2) जल में घुलने वाले। इनमें ए., डी., ई. तेल में वी. और सी. जल में घुलने वाले हैं। ये विभिन्न शाक, फल, पनीर, अण्डा, दूध आदि में (जिनकी तालिका का पृथक् देना संभव नहीं) पाए जाते हैं। इनके अभाव में कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इनका भोजन में प्रयोग करना उचित मात्रा में अत्यावश्यक है।

वैज्ञानिक ढंग से भोजन का परिमाण कैलोरी द्वारा निर्धारित किया जाता है। मनुष्य को कैसा कर्म करने के लिए कितनी कैलोरियाँ प्रतिदिन आवश्यक है। इसमें मतभेद है और यह बात विशेषकर जलवायु पर आधारित है। उदाहरणार्थ 6 घंटा कार्य करने वाले को 2600 कैलोरियाँ चाहिए।

सुंदर भोजन—उसे कह सकते हैं जिसमें मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भोजन के सब मुख्य अंश पर्याप्त मात्रा में हों। गर्भवती स्त्रियों के भोजन में प्रोटीन विटामिन और खनिज पदार्थों की अधिकता हो। बालक के आहार में प्रोटीन कुछ कम रहना चाहिएँ। अतः माता के दूध के अतिरिक्त अन्य गाय बकरी के दूध जल मिलाकर दिए जाएँ। विद्यार्थियों और अन्य मानसिक श्रम करने वालों को कार्बोज कम मात्रा में देना चाहिए। घी, दूध, मलाई आदि का अधिक सेवन करना चाहिए।

स्वास्थ्य के लिए आहार की पाचन शीलता आवश्यक है अन्यथा स्वस्थ रहना बहुत ही कठिन है। भोजन धीरे-धीरे चबाकर खाना चाहिए और उतना ही जितना सुगमता से पच सके। भोजन का समय निश्चित हो और दूसरी बार का भोजन कम-से-कम 4 घंटे बाद किया जाए।

इस प्रकार स्वास्थ्य और भोजन अन्योन्याश्रित हैं। भगवान आत्रेय ने कहा है—'परीक्ष्य हितमश्नीयात्' अर्थात् परीक्षा कर भोजन करे क्योंकि उस अवस्था में ही तुम स्वस्थ रह सकोगे अन्यथा नहीं। आगे इसी विषय में कहा गया है कि 'देहो आहार सम्भवः यह शरीर आहार से बनता है। भाव स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति उचित आहार का सेवन न करे तो शरीर क्षीण होकर नष्ट हो जाएगा। 'जान है तो जहान है' अतः मनुष्य को अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए अपने जीवन की रक्षा करनी चाहिए जो वास्तव में आहार पर निर्भर है।

भोजन कैसा हो कितना हो इस विषय में भी शास्त्र मौन नहीं। यों तो ऊपर काफी लिखा जा चुका है। फिर भी महर्षि आत्रेय के शब्द इस विषय में कितने महत्वपूर्ण हैं वे लिखते हैं—

हिताशीस्यात् मिताशी स्यात् काल भोजी जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात् ॥

भाव है—भोजन हितकर और परिमित करे। समय पर करे। जितेन्द्रिय रहे बुद्धिमान पुरुष विषम भोजन से उत्पन्न होने वाले रोगों का ध्यान रखकर विषम भोजन से बचे।

साथ ही भगवान आत्रेय ने यह भी बताया है कि रोगोपचार करते हुए भी

भोजनादि पर ध्यान रखना आवश्यक है। वे कहते हैं—

यद् यच्छक्यं मनुष्येण कर्तुमौषधमापदि।
तत्तत् सेव्यं यथा शक्ति वसना न्यशनानिच ॥

अर्थात् रोग के समय औषधोपचार आदि के साथ शक्त्यनुकूल निवास और भोजन की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

आयुर्वेद में विभिन्न स्थलों पर आहार पर विशेष ध्यान दिया गया है और स्पष्ट बताया है कि—

पथ्याशी व्यायामी स्त्रिषु जितात्मा नरो न रोगी स्यात्

और—

नित्यं हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दातासमः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवेत्यरोगः ॥

अर्थात्—नित्य उचित आहार-विहार का सेवन करने वाला, गंभीरता से विचार करने वाला, विषयों में अनासक्त रहने वाला, स्थिर चित्त धैर्यवान् सत्यवादी, क्षमाशील, आप्तों (गुरुजनों) का आज्ञा पालक सदा स्वस्थ रहता है।

इस प्रकार हमारे आचार्यों ने मनुष्य के कल्याण के लिए पद-पद पर उचित आहार के लिए बल दिया है क्योंकि वे जानते थे कि मनुष्य का शरीर इसी से बनता है और इसी पर निर्भर रहता है। इसकी उचित व्यवस्था न होना मानव का जीवन संकट में पड़ना है। माधव निदान के ज्वर प्रकरण में 'मिथ्याहार विहाराभ्याम्' आदि द्वारा ज्वर का कारण आहार का वैषम्य ही तो प्रतिपादित हुआ है। इसलिए हर मनुष्य को नीरोग रहने के लिए स्वास्थ्य-रक्षा की उन्नति के लिए उचित आहार आवश्यक है। वीर्य का आदि कारण आहार है इसलिए कहा है, "आहारस्य परं धाम शुक्रंतद् रक्ष्यमात्मनः" आदि द्वारा इसकी पुष्टि की गई है। उचित आहार सेवी को औषधि की इतनी अपेक्षा नहीं रहती इसलिए वैद्य जीवनम् में श्री लोलिम्बराज ने लिखा है—**पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधि निषेवणे**—

अतएव जीवन के हर क्षेत्र में सफलता चाहने वाले व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए और उचित आहार का सेवन करना चाहिए। तभी हमारा राष्ट्र उन्नत होगा और आज के हर बालक का चेहरा उचित आहार के सेवन से स्वस्थ होकर दमक उठेगा।

●

सिनेमा और स्वास्थ्य

आज विश्व के रंगमंच के ऊपर मृत्यु देवी अपना मोहिनी रूप धारण करके हमारा निष्ठुर परिहास कर रही है। हमारी मूर्खताओं को देख-देखकर खिलखिला कर हँस रही है और हम प्रेमी पागल पतंगों की भांति उसकी रूप-शिखा में जलते जा रहे हैं। जीवन के बाजार में भारी घाटे से भरे इस सौदे को और देखना तो दूर हम उस पर विचार भी नहीं करते। यह विज्ञान का युग है। चारों ओर भौतिकवाद और भौतिक विज्ञान का बोलबाला है। विज्ञान ने हम पर जादू कर दिया है। आधुनिक आविष्कारों ने मानव को इतना बेबस और चकित बना दिया है कि वह चाह कर भी दूसरी ओर देखने का साहस नहीं कर सकता। विज्ञान, जैसा कि उसका नाम से ही स्पष्ट है, विशेष ज्ञान को ही कहते हैं और उसका उपयोग लोक कल्याण के लिए होता है। पर आधुनिक विज्ञान मानव के मस्तक को विकृत एवं उसके स्वास्थ्य के विनाश के लिए ही विशेषकर प्रयत्नशील है।

सिगरेट, चाय आदि की भांति सिनेमा भी आधुनिक विज्ञापन की एक महत्वपूर्ण पर हानिप्रद देन है। इन बोलते-चालते सिनेमाओं ने अपने कृत्यों से सारे संसार के मानव मात्र को चकित कर रखा है। वास्तव में यह कला के रूप में छिपी हुई बला है। भारत भला इसके पंजे से कैसे मुक्त रह सकता था—आ ही गया लपेट में आखिर। अब भारत में एक भी बड़ा नगर ऐसा नहीं जहाँ 50-60 छविघर न हों। धीरे-धीरे गाँव-गाँव में इस बला का प्रवेश होता जा रहा है।

इसमें संदेह नहीं कि सिनेमा के द्वारा भारत का उपकार भी किया जा सकता है। इनके द्वारा जिस आसानी से भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला-कौशल एवं देश सेवा के प्रचार के साथ-साथ अनेक प्रकार के सामाजिक सुधार भी किए जा सकते हैं, जो अन्य उपाय द्वारा संभव नहीं, किंतु हमारा अभाग्य है कि इस ओर राष्ट्र के कर्णधारों का ध्यान नहीं के बराबर है। हाँ, अभी कुछ दिनों से भारतीय समाचार दिखाए जा रहे हैं, पर ये अभी तक नहीं के बराबर ही हैं। किसी भी विज्ञान की उत्पत्ति मानव समाज के उत्थान के लिए होती है न कि पतन के लिए। प्राचीन भारत की नाट्यकला साक्षी है इस बात की कि गत काल में आदर्श व्यक्तियों के

चरित्र-चित्रण द्वारा समाज में शूरता, वीरता, धीरता, देशभक्ति, तप, त्याग, साहस, सदाचार आदि सद्गुणों का प्रचार किया जाता था। उस समय भारत अनेक विद्याओं-कलाओं का घर था, छोटे-छोटे बच्चे तक देश की रक्षा के लिए सभी कष्ट सहना और मरना जानते थे, उनका जीवन और मरण दोनों ही सार्थक होते थे। पर आज उसके ठीक विपरीत छोटे-छोटे बच्चों मुख पर ओज के स्थान पर मिलेंगे प्रेम के गंदे फिल्मी गाने। ब्रह्मचर्य की शिक्षा बेचारे पाएँ तो कहाँ, उन्हें क्या पता **ब्रह्मचर्येण तपसा देवा यमृत्यु मुपाघ्नतः** क्या बला होती है और ब्रह्मचर्य से लाभ क्या होता है। कोई विद्वान वैद्य यदि मुँह खोलता भी है तो डेडसाइंस कह कर उसका मुँह बंद कर दिया जाता है। ब्रह्मचर्य की शिक्षा के अभाव में भारत की संतति की क्या अवस्था है, इससे सब भली-भांति परिचित हैं।

सर्वप्रथम तो सिनेमा का प्रभाव जो बालकों पर पड़ता है, वह दूषित विकारों का प्राबल्य जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्मचर्य का पालन संभव नहीं, संतति निर्जीव होती जा रही है। सब जानते हैं कि निर्बल किसी काम का नहीं होता, फिर भारत के भावी कर्णधारों की वर्तमान स्थिति से भविष्य में क्या आशा की जा सकती है।

पहले बालकों को बड़ों का आदर करने की शिक्षा दी जाती थी, जिसमें उनका ही हित था, पर अब अनुशासन और मर्यादा केवल किताबी बातें रह गई हैं। पाठकों को जानना चाहिए बड़ों को वंदना और उन्हें प्रणाम करने से व्यक्ति में चार वस्तुएँ बढ़ती हैं—आयु, विद्या, यश और बल। ब्रह्मचर्य और गुरुजनों की सेवा से ही भीष्म पितामह ने इच्छामृत्यु का वरदान पाया था, आज उनकी-सी वीरता की कल्पना करना भी अशक्य है। आज तो हर जगह अनुशासन-भंग और गुरुजनों की अवज्ञा के ही समाचार सुनाई देते हैं जो स्पष्टतः सिनेमा का ही परिणाम हैं। निर्देशक जनता को हँसाने के लिए कभी-कभी गुरुजनों के बनाने का दृश्य उपस्थित कर देते हैं, और बालक उन्हें सीखकर कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हैं, परिणाम स्पष्ट है ही। आँखों पर भी सिने लाइट का बहुत बुरा असर होता है। आज हर युवक की आँख पर लगे चश्मे इस बात के साक्षी हैं, क्या पहले कभी इस छोटी-सी अवस्था में किसी को चश्मा लगाते देखा था, कभी नहीं। फिर कभी इसके कारण पर विचार किया है या नहीं कि सिनेमा और वनस्पति घृत ही इसके लिए एकमात्र उत्तरदायी है।

यदि किसी बालक को या बड़े को आप एक घंटा खड़े रहने की आज्ञा दें तो शायद ही वह खड़ा रहे पर सिनेमा के लिए दिन भर खड़ा रहना उसके लिए साधारण बात है। इसके अतिरिक्त सिनेमा में बहुत से व्यक्तियों से सट कर बैठना पड़ता है और कई व्यक्तियों को उगली हुई साँस अंदर ले जानी पड़ती है जिससे

अनेक रोग होने का भय रहता है। आयुर्वेद के मतानुसार इस प्रकार की दूषित वायु में साँस लेना नितांत अनुचित है। यहाँ से सिगरेट तथा चाय की बुरी आदतें भी सब लोग सीखते हैं, और जानबूझ कर इस मीठे, आयुनाशक तथा खर्चीले विष को अपना स्वास्थ्य भक्षण कराते हैं। इस प्रकार **विषकुम्भं पयोमुखम** के अनुसार सिनेमा हमारा स्वास्थ्य चौपट करता जा रहा है, और हम आँख बंद कर इसके पीछे तबाह होते जा रहे हैं। आयुर्वेद में नेत्ररक्षा के विषय में कहा है—**चक्षुरक्षण जीवनम्**, हिंदी में भी कहते हैं—"आँख गई जहान गया, दाँत गए स्वाद गया" पर आज हम अपने हाथों स्वयं का विनाश कर रहे हैं। दूषित वायु में साँस ले अपने शरीर को टी॰ बी॰ आदि अनेक रोगों का घर बना—**शरीरं व्याधिमन्दिरम्** की उचित चरितार्थ कर रहे हैं। इस सभ्यता के अभिशाप सिनेमा के हवनकुण्ड में अपने अमूल्य समय, धन और अपने स्वास्थ्य की आहूति दे रहे हैं।

●

स्नान से पहले व्यायाम कीजिए

मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए जिस प्रकार संतुलित भोजन, शुद्ध वायु और शुद्ध जल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार स्नान की। किंतु स्नान से पूर्व व्यायाम अवश्य करें। व्यायाम न करने से शरीर आलसी और रोगी हो जाता है। व्यायाम करने से मानव क्रियाशील और स्फूर्तिशील हो जाता है एवं वह हृष्ट-पुष्ट और निरोग रहता है। निरोग मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क पूर्णरूपेण विकसित होता है तथा उसमें आत्मविश्वास की भावना प्रचुर मात्रा में आ जाती है। व्यायाम की आवश्यकता बताते हुए वाग्भटकार सूत्र स्थान में लिखते हैं—

लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्त घन गात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥

अर्थात्—व्यायाम (दंड-बैठक आदि) करने से शरीर में हल्कापन, सब काम करने की सामर्थ्य, जठराग्नि दीप्त, मेद का क्षय और शरीर के सब अंगों का सुंदर गठन तथा घनता उत्पन्न होती है, अतः प्रत्येक स्वस्थ, स्वास्थ्य-कामी को प्रतिदिन प्रातः व्यायाम करना चाहिए।

जैसा कि हम जानते हैं कि शरीर में रक्त ही सब अंगों को पोषक तत्व पहुँचाता है। रक्त परिभ्रमण क्रिया व्यायाम पर आधारित है। जिस समय हम कोई शारीरिक कार्य नहीं करते और चुपचाप आलसी की तरह लेटे रहते हैं, हमारा सारा शरीर शिथिल रहता है। ऐसी स्थिति में रक्त परिभ्रमण की गति धीमी रहती है। परिणाम स्वरूप शरीर के सब अंगों को पोषक तत्व कम मात्रा में पहुँच पाते हैं तथा उनके मल पदार्थ भी धीमी गति से वहाँ से दूर हो पाते हैं। अधिक आलसी और सुस्त व्यक्ति की पाचन-क्रिया भी ठीक से नहीं हो पाती है, जिसके फलस्वरूप भोजन का शरीर में एकीकरण ठीक नहीं हो पाता। भोजन के एकीकरण के अभाव में अनेक रोगों की संभावना रहती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति क्रियाशील होता है उसका स्वास्थ्य सदैव अच्छा रहता है और वही—**आरोग्यम् मूलमुत्तमम्** के अनुसार—**शरीररामधम् खलुधर्म साधूनम्** का आदि कारण है। व्यायाम का लक्षण चरक सूत्र स्थान अध्याय 7 में निम्न रूप में वर्णित है—

शरीरचेष्टा या स्थैर्यार्था बल वर्धिनी।
देहव्यायाम संख्याता मात्रयातां समाचरेत् ॥

भाव यह है कि जो शरीर की चेष्टा मन को अभीष्ट होते हुए स्थिरता, दृढ़ता तथा बल बढ़ाने के लिए की जाती हो, उस चेष्टा का नाम शारीरिक व्यायाम है। सुश्रुत में व्यायाम का लक्षण निम्न रूप में उपलब्ध है—

क्रमवृद्ध्या सदारोग्य शरीर बल पुष्टिदः।
आरोग्यंबल पुष्टिघ्नः स एवाक्रम सेवितः ॥
स्वेदागमः श्वासवृद्धिर्गात्राणाम् चा तिलाघवम्।
हृदया द्युपरोधश्च इति व्यायाम लक्षणम् ॥

सुश्रुत इसके लक्षण तथा लाभ के विषय में लिखते हैं—

शरीरायास जननं कर्म व्यायाम संज्ञितम्।
तत्कृत्वातु सुखं देहं विमृद्‌गीयात्समन्ततः ॥
शरीरोपचयः कान्तिर्गात्रागां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा ॥
श्रम क्लम पिपासोष्ण शीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥
न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो भयात् ॥
न चैनं सहसाऽऽक्रम्य जरा समधि रोहति।
स्थिरी भवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥
व्यायाम क्षुण्ण गात्रस्य पदभ्यामुद्वर्त्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्र मृगा इव ॥
वयो रूप गुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम्।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् ॥
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते।
व्यायामो हि सदापथ्यो बलिनाम् स्निग्धभोजिनाम्।
स च शीते वसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ॥

व्यायाम से न केवल जठराग्नि की वृद्धि होती है अपितु धात्वग्नि की भी। इसके अतिरिक्त शारीरिक लाभांश की स्थिरता के लिए भी जो पेशिय-क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है व्यायाम की अतीवावश्यकता है। यदि मनुष्य पोषक घृत आदि पदार्थों का सेवन करता रहे और व्यायाम न करे तो रक्त में पोषक भाग बहुत अधिक संग्रह हो जाता है और परिणामस्वरूप मनुष्य में चर्बी बढ़ जाती है। यदि

व्यायाम करता रहे तो मेद जमा नहीं हो पाती और जमा हुई चर्बी जल जल कर शक्ति को उत्पन्न करती है अन्यथा सिर भारी होना, गठिया, मेदो रोग आदि हो जाते हैं। व्यायाम से मल-मूत्र पसीना आदि भी शीघ्र बाहर निकल जाते हैं, जिससे शरीर नीरोग रहता है। उचित मात्रा में किए गए व्यायाम से क्या लाभ होता है, इस विषय में चरकसूत्र स्थान अध्याय 7 में लिखा है—

लाघवं कर्म सामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेश सहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्चव्यायामदुपजायते ॥

संक्षेप में भाव यह है—उचित व्यायाम से शरीर में हल्कापन कार्य करने की शक्ति, स्थिरता, क्लेश तथा दुःखों को सहन करने की शक्ति, दोषों का नाश और अग्नि की वृद्धि होती है। व्यायाम किन्हें करना चाहिए इस विषय में चरक में कहीं-कहीं यह पाठ उपलब्ध है—

अरोगी जीर्ण भक्तश्च नरो व्यायाममाचरेत्।
नातिपीड़ाकरो देहे बलवान् श्लेष्मिके गदे ॥
व्यायामोष्ण शरीरत्वात् स्वेदाच्च प्रविलायिते।
श्लेष्मणिश्लैष्मिका रोगा न भवन्ति शरीरिणः ॥
अजीर्णिनस्त्वामरसः व्यायामेनाकुलीकृतः।
देहे विसर्पन् जनयेत् रक्तपित्तमयान् जहान् ॥
येऽतिव्यायामतो रोगा मानवानां भवन्ति हि।
घृत मांसरसक्षीर वस्तिभिस्तानुपाचरेत् ॥

भाव स्पष्ट है कि उचित मात्रा में किए गए व्यायाम से पसीना आदि निकलकर शरीर रोग विमुक्त रहता है और विपरीताचरण, अति व्यायाम आदि से अनेक रोग होने की संभावना बन जाती है।

व्यायाम किस मात्रा में करना चाहिए इस विषय में वाग्भटकार सूत्रस्थान में लिखते हैं—

अर्धशक्त्या निषेव्यस्तुबलिभिः स्निग्धोभोजिभिः।

अर्थात् व्यायाम अपने बल से आधी शक्ति तक करना चाहिए। जो नित्य चिकना भोजन करने वाले हैं व्यायाम उन्हें ही हितकर होता है क्योंकि व्यायाम से मेद और कफ का गुरुत्व क्षय होकर शरीर में लघुत्व, कर्म सामर्थ्य आदि गुण उत्पन्न होते हैं। यदि बिना घृतादि स्निग्ध पदार्थ सेवन किए व्यायाम किया जाए तो रूक्षता बढ़कर वातविकार हो सकते हैं। इसलिए व्यायाम स्निग्ध भोजी को करना चाहिए। व्यायाम न करने से आलस्य, कफ, मेदादि बढ़कर शरीर को शिथिल बना देते हैं, अतः व्यायाम अवश्य करें। इसी भाव को सुश्रुत ने इस

रूप में अभिव्यक्त किया है–

सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुंभिरात्महितैषिभिः।
बलस्यार्द्धेन कर्त्तव्यो व्यायामोहन्त्यतोऽन्यथा ॥

इस बलर्द्ध के लक्षण निम्न रूप में दर्शाए गए हैं–

हृदिस्थानस्थितो वायुयर्दावक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायामंकुर्वतो जन्तोस्तद्बलार्द्धे विनिर्दिशेत् ॥
अथवा- कक्षाललाटनासासु हस्तपादादि सन्धिषु।
प्रस्वेदात् मुखशोषाञ्च बलार्द्धेतद्विनिर्दिशेत् ॥

भाव यह है कि फुफ्फुस के अंतिम भाग तक लघु कोष्ठकों में भी जब व्यायाम करते हुए श्वास प्रश्वास होने लगे उसे बलार्द्ध जानना चाहिए। अथवा–कक्ष, मस्तक, नाक तथा हाथ-पैर आदि की सन्धियों में पसीना आने से मुख के सूखने से बलार्द्ध जानना चाहिए।

व्यायाम के लिए हितकाल के संबंध में सुश्रुत का मत ऊपर उद्धृत किया जा चुका है और वाग्भटकार का मत निम्न है–

शीतकाले वसन्ते च मन्दमेव ततोऽन्यदा।
तं कृत्वाऽनु सुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः ॥

अर्थात् शीतकाल और वसंत ऋतु में व्यायाम विशेष रूप से करना चाहिए, (विशेष का भाव शक्ति से अधिक नहीं अपितु यथार्थ) अन्य ग्रीष्मादि ऋतुओं में बहुत कम व्यायाम करना चाहिए क्योंकि ग्रीष्मादि काल में पसीना आकर रोग मार्ग खुले हुए होते हैं और पवन का बल होता है तथा वात पित्त की अधिकता में व्यायाम का निषेध भी है। इसलिए शीत और वसंत काल के अतिरिक्त थोड़ा-थोड़ा व्यायाम करना उचित है।

व्यायाम करने के अनंतर सुखपूर्वक संपूर्ण देह को धीरे-धीरे मलना (मसलना) चाहिए जिससे पसीना सूखने तक शरीर की गर्मी साम्यावस्था में पहुँच जाए और हवा से होने वाले कोई विकार न होकर शरीर दृढ़ रहे। निम्न व्यक्तियों को भूलकर भी व्यायाम न करना चाहिए–

वात पित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्ण च तं त्यजेत्।–वाग्भट

अर्थात् व्यायाम सबके हितकर होते हुए भी वात पित्त के रोगी, छोटे बालक, वृद्ध, अजीर्ण रोग वाले (अथवा जब तक भोजन यथार्थ रूप से परिपाक होकर जीर्ण न होवे तब तक) व्यायाम (कसरत Exersise) न करना चाहिए।

व्यायाम उचित मात्रा में लाभप्रद होता है यदि अति मात्रा में किया जाए तो निम्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

तृष्णाक्षयः प्रतमको रक्त पित्तंश्रमः क्लमः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥–वाग्भट
श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्ण रक्त पित्तंप्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासोज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥–चरक

अति व्यायाम से प्यास, क्षय, प्रतमक श्वास (दमा), रक्तपित्त, श्रम (थकावट), क्लम (बिना परिश्रम किए ही शरीर में श्वास रहित श्रम का होना) खाँसी, ज्वर और छर्दि रोग हो जाते हैं। अतः अधिक व्यायाम न कर अपनी शक्ति से आधी शक्ति तक ही व्यायाम करना चाहिए, एवं–

व्यायामहास्य भाष्याध्वग्राम्यधर्म प्रजागरान्।
नोचितानपिसेवेत बुद्धिमानतिमात्रया ॥–चरक

व्यायाम, हँसना, बोलना, सैर करना या चलना, मैथुन तथा रात्रि-जागरण प्रभृति चाहे अभ्यास भी हो तो भी बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि उनका अधिक मात्रा में सेवन न करे। सुश्रुत ने भी कहा है–**न स्वप्न जागरण शयनाशन चङ्क्रमया यान वाहन प्रधावन लङ्घन प्लवन प्रतरण हास्य भाष्य व्यवाय व्यायामादीनुचितानप्यति सेवेत।**

यदि आयुर्वेद के इस मत को स्वीकार न कर अति व्यायाम किया जाए तो निश्चित हानि की संभावना रहती है। इस विषय में वाग्भट और चरक सूत्रस्थान में क्रमशः स्पष्ट लिखा है–

व्यायाम जागराध्व स्त्रीहास्य भाष्यादि साहसम्।
गजं सिंहं इवाकर्षन् भजन्नति विनश्यति ॥–वाग्भट
एतानेवं विधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते।
गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति ॥–चरक

अर्थात् उपरोक्त वर्णित सभी कार्यों या इस प्रकार के कार्यों को जो अति मात्रा में सेवन करता है वह शीघ्र ही रोग एवं मृत्यु का ग्रास बनता है। जैसे सिंह हाथी को मारकर पुनः उसे खींचकर दूसरी जगह ले जाना चाहता है अर्थात् मात्रा से अधिक उसे खींचने में शक्ति लगाता है परिणामस्वरूप उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह–**अति सर्वत्र वर्जयेत्** का सदा ध्यान रखे।

यह तो हुआ शास्त्रीय विवेचन अब साधारणतः व्यायाम के लाभ पर ध्यान देना आवश्यक है जिन्हें हम निम्न भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(1) कोई शारीरिक काम करते समय अथवा व्यायाम करते समय हमारे अंगों में गति होती है। इस गति के कारण रक्ताभिसरण क्रिया तीव्र गति से होती

है। रक्त परिभ्रमण शीघ्रता से होने के कारण हमारे अंगों को पोषकतत्व अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं तथा उनके दूषित पदार्थ (मलादि) रक्त द्वारा शीघ्रता से बाहर निकल जाते हैं।

(2) व्यायाम करते समय हम साँस भी जल्दी जल्दी लेते हैं जिससे फुफ्फुसों में शुद्ध वायु अधिक मात्रा में पहुँचती है। इस प्रकार रक्त को अधिक प्राणवायु (Oxygon) प्राप्त हो जाती है तथा उसमें की दूषितवायु Corbondiode शीघ्रता से बाहर निकल जाती है।

(3) त्वचा में रक्तसंचार शीघ्रता से होने के कारण पसीना अधिक मात्रा में निकलता है जिससे रक्त का यूरिया और यूरिक ऐसिड अधिक मात्रा में शीघ्रता से दूर हो जाते हैं।

(4) रक्त संचार तीव्रता से होने के कारण हृदय की गति बढ़ जाती है जिससे उसका भी पर्याप्त मात्रा में व्यायाम हो जाता है। ऐसा होने से हृदय दृढ़ बनता और हृष्ट-पुष्ट रहता है।

(5) रक्त के पोषक तत्व शीघ्रता से विभिन्न अंगों में पहुँचने के कारण शीघ्र ही कम हो जाते हैं जिससे हमें भोजन की आवश्यकता प्रतीत होती है। फलस्वरूप भूख ठीक से लगती है और इसी से भोजन अच्छी तरह पच जाता है और उसका रक्त में एकीकरण भी ठीक प्रकार से हो जाता है।

इन सबका सम्मिलित प्रभाव हमारे शरीर को स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट बनाता है। अतः हर स्वास्थ्य-कामी को व्यायाम के प्रति सतत जागरूक रह कर मानव जीवन की सार्थकता प्राप्त करनी चाहिए।

व्यायाम कैसे और कब करना चाहिए ?

इस विषय में शास्त्रीय आज्ञा का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। फिर भी साधारण तथा निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिए–व्यायाम सदैव खुली हवा में करना चाहिए जिससे शुद्ध वायु प्राप्त हो। गंदी वायु में व्यायाम करने से गंदी हवा अधिक मात्रा में शरीर में पहुँचकर अधिक हानि पहुँचाएगी। इसके अतिरिक्त व्यायाम के संबंध में निम्न बातों का भी ध्यान रखना चाहिए–

(1) भोजन करने के तुरंत पश्चात व्यायाम नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार व्यायाम करने के तुरंत बाद ही भोजन नहीं करना चाहिए।

(2) तुरंत स्नान के बाद व्यायाम करना या व्यायाम करने के तुरंत बाद नहाना दोनों ही हानिप्रद हैं।

(3) व्यायाम अपनी शक्ति से आधा ही करना चाहिए। शक्ति से अधिक

व्यायाक हानिप्रद है। अपनी सामर्थ्य से अधिक कठिन या अनवरत (लगातार) दूर तक व्यायाम करने से हानि पहुँचती है। ऐसा करने से श्वास, हृदय के रोग तथा अन्य (उपरोक्त) रोग हो जाते हैं। अधिक परिश्रम पड़ने से मांसपेशियां दृढ़ और स्वस्थ होने के स्थान पर अशक्त और अस्वस्थ हो जाती हैं। हम कितना व्यायाम करें यह ऊपर बताया जा चुका है। फिर भी व्यायाम हमारी आयु, कार्य, भोजन और स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

व्यायाम के प्रकार

हम किस प्रकार का व्यायाम करें यह भी उक्त बातों पर निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार के खेल--हाकी, फुटबाल, कबड्डी, कुश्ती, दण्ड-बैठक, मुद्गर-चालन आदि। झूला झूलना, तैरना, दौड़ना तथा टहलना व्यायाम के विभिन्न रूप हैं। विदेशी खेलों में भारतीय खेल विशेषकर तैरना विशेष लाभप्रद है क्योंकि इससे सब अवयवों का व्यायाम भली प्रकार हो जाता है। इनमें से किसी-न-किसी प्रकार का व्यायाम प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। व्यायाम स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए समान रूप से आवश्यक है। वृद्ध व्यक्तियों के लिए टहलना सबसे अधिक उपयुक्त व्यायाम है। छोटे बालकों के लिए दौड़ना तथा अन्य शारीरिक परिश्रम के खेल उपयुक्त होते हैं। स्त्रियों के लिए कूप से जल निकालना, चक्की चलाना, कूटना आदि क्रियाएँ लाभप्रद तो हैं ही साथ ही **एकाक्रिया द्व्यर्थकारि प्रसिद्धा** की भी परिचायक हैं। व्यायाम के एक घंटे बाद स्नान करना अच्छा है। जो तैरने का व्यायाम करते हैं, उन्हें तो अन्य व्यायाम करने की जरूरत नहीं।

निर्बल व्यक्ति देश और समाज का तो दूर, स्वयं अपना भी भला नहीं कर सकता। स्वस्थ नागरिक ही राष्ट्र और राष्ट्रीय जीवन के आधार हैं। अतः प्रत्येक नागरिक का पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ाने के लिए सदैव व्यायाम कर अपने को पुष्ट बनाए और आयुर्वेद की इस उक्ति पर ध्यान दें–

–धीमतातदनुष्ठेयं स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।

●

मानव का कटुतम शत्रु श्वास

'श्वास' जैसा कि इसके नाम से ही विदित है कि यह श्वसन-संस्थान का रोग है। आज अनेक व्यक्ति इस कराल रोग रूपी दानव के पंजे में फँसकर अपना स्वास्थ्य और धन स्वाहा कर निरुपाय और श्रमित के समान असहाय अमानवीय यंत्रणा का कटु आस्वाद लेते हुए जीवनयापन कर रहे हैं। इसकी असाध्यता की वृद्धि ने यह कहावत प्रसिद्ध कर दी है–'दमा दम के साथ जाता है'। इतना ही नहीं इस महाभयानक शत्रु से प्रपीड़ित व्यक्ति–**शरीरं व्याधि मन्दिरम्** की उक्ति को ही चरितार्थ नहीं करता, अपितु उसका कलेवर अस्थिपंजरावशिष्ट रहकर, शैतान के पंजरसा ही वास्तव में भयावह प्रतीत होने लगता है।

यह रोग क्यों होता है ? इस विषय में वाग्भटकार निदान स्थान अध्याय 4 में लिखते हैं–

कास वृद्ध्या भवेच्छ्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः।
आमातिसार वमथु विष पाण्डु ज्वरैरपि ॥
रजोधूमानिलैर्मर्मघातादति हिमाम्बुना।
क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नोमहानूर्ध्वश्चपञ्चमः ॥

अर्थात् खाँसी पुरानी होकर बढ़ जाने से अथवा निजी कारणों से, वातादि दोषों का प्रकोप हो जाने से एवं आमातिसार, वमन, विष, पाण्डु रोग तथा ज्वर की अधिकता से, गर्द पड़ने से, धूम से, वायु के स्पर्श से हृदयादि मर्म के अभिघात से, अति शीतल जल के अधिक सेवन से प्रकुपित हुआ दोष क्षुद्र, तमक, छिन्न महान् और उर्ध्व इन पाँच प्रकार के श्वासों को उत्पन्न करता है।

पर क्योंकि "निदाने माधवः श्रेष्ठः कहा गया है। अतः 'माधव निदान' के मत से श्वास का निदान (आदि कारण) यह है–

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः।
शीतपानाशनस्थानरजोधूमातपानिलैः ॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥

अर्थात् मद्य, मिर्च, राई, गन्ने का रस आदि जलन उत्पन्न करने वाले पदार्थ, गुरु-रूक्ष पदार्थ, अभिष्यन्दि, श्लेष्म उत्पन्न करने वाले दही आदि पदार्थ, शीतल पानक, ठंडा भोजन करने से, ठंडी जगह रहने से, नाक मुख द्वारा अंदर धूल और धुआँ चले जाने से, तीव्र धूप और तेज वायु में अधिक देर तक रहने से, परिश्रमाधिक्य से, भार ढोने से, मल-मूत्रादि का वेग रोकने से, उपवास से, हिक्का, श्वास, कास आदि रोग होते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिन कारणों से वात-दोष प्रकुपित हो उरो गुहा तल में प्रवेश करके महा प्राचीरा पेशी और श्वास नलिका के संबंध को बिगाड़कर, प्रकुपित हुआ वात-दोष कफ से मिल इतर मांस पेशियों के कार्य में विकृति कर श्वास रोग की उत्पत्ति कराता है।

आचार्यो ने श्वास रोग को चिकित्सा की सुविधा के लिए, ऊर्ध्व, तमक, छिन्न, क्षुद्र और महा पाँच भागों में विभाजित किया है–

महोर्ध्वछिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥

इनमें क्षुद्र श्वास वात प्रधान, तमक कफ प्रधान, छिन्न कफ वात प्रधान तथा ऊर्ध्व एवं महाश्वास वात प्रधान होते हैं। इस विषय में सु. सू. अ. 41 श्लोक 4 में लिखा है–

वाताधिको भवेत् क्षुद्रस्तमकस्तु कफोद्भवः।
कफवाताधिकश्चैव संसृष्टश्छिन्नसंज्ञकः ॥
श्वासो मारुत संसृष्टो महानूर्ध्वस्ततोमतः ॥

श्वास का पूर्व रूप निम्न लक्षणों के साथ प्रगट होता है–

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीड़ा शूलमाध्मानमेव च।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शङ्खनिस्तोद एव च ॥

अर्थात् श्वास रोग होने से पूर्व गले और उदर स्थान में भारीपन हृदय में पीड़ा, शूल, अफारा, मलावरोध, मुँह का स्वाद बिगड़ना कनपटियों में चुभन सी होना, आदि लक्षण प्रगट होते हैं।

सम्प्राप्ति– **यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।**
विष्वग्व्राजति संरुद्धरस्तदा श्वासान् करोति सः ॥

जब श्वास वाहिनी और अन्न-जल वाहिनियों के स्रोतों में दूषित कफ भर जाने से वायु का आवागमन मार्ग निरुद्ध हो जाता है, तब आमाशय में से प्राणवायु प्रकुपित होकर सर्वत्र (उरस्थान) में फैल श्वास रोग की सम्प्राप्ति करा देती है। ऐसा क्यों होता है ? इसका समुचित उत्तर च. चि. अ. 5/18 में उपलब्ध है।

क्षयात् सन्धारंणाद् रौक्ष्याद् व्यायामत् क्षुधितस्य च।
प्राणवाहिनि दुष्यन्ति स्रोतांस्यन्यैश्चदारुणैः ॥

धातुक्षय, मल-मूत्रादि का वेग धारण, रूक्ष पदार्थों का सेवन, अति व्यायाम, अति क्षुधा और अन्यान्य साहसिक (दारुण) कार्य करने से प्राणवाहिनियाँ दूषित हो, श्वास रोग की सम्प्राप्ति कराती हैं और–

प्राणोदकान्नवाहानां दुष्टानां श्वासिकी क्रिया।
कार्यातृष्णोपशमनी तथैवामप्रदोषिकी ॥–च. चि. अ. 5/34॥

प्राणवाहिनियाँ विकृत होकर श्वास रोग, उदक वाहिनियाँ दूषित हो तृषाविकार और अन्न वाहिनियाँ दूषित हो आमविकार को उत्पन्न करती हैं। भाव संक्षेप में यह है कि प्राणवाहिनियों की विकृति ही प्राण वायु को प्रकुपित कर श्वास रोग उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त मार्गवरोध भी प्राण वायु प्रकुप्त कर देता है। इससे कफ, पित्त, शोथादि प्राणवाहिनी में आ जाने और नलिका द्वारा संकोच होने से अवरोध स्थिति उत्पन्न होती है। प्रथम चारों श्वासों में प्राणवाहिनी की विकृति के साथ ही कफ का प्रतिबंध भी आ जाता है। तमक श्वास में मार्ग का संकोच रोगी की दशा दयनीय बना देता है एवं छिन्न श्वास में पित्तजन्य दाह भी होता है।

यह तो हुई आयुर्वेदीय बातें आधुनिक चिकित्सा पद्धति (Alopathy) के अनुसार--श्वास यंत्र में विकृति या कोई प्रतिबंध आ जाने पर जब श्वासोच्छवास क्रिया बलात्कार से होती है तब इसे श्वास (Dyspnoea) कहते हैं। इसकी सम्प्राप्ति के विषय में उनका मत है। रक्त में जब (Corbondioxde) की मात्रा बढ़ जाती है तब (Vagees nerves) (प्राणदा नाड़ी) की फुफ्फुस गत शात्रा आक्षेप ग्रस्त हो जाती है और श्वास केंद्र (Respiratory centre) में उत्तेजना आ जाती है जो श्वास-केंद्र सुषुम्ना शीर्ष में स्थित है वही श्वासोच्छवास क्रिया का मुख्य आधार है। इसके उत्तेजित होने पर दूषित वायु को बाहर निकाल देने के लिए निःश्वास क्रिया में तेजी आ जाती है और श्वास रोग की सम्प्राप्ति हो जाती है। हृत्कोश की विस्तृति या कृशता रक्ताभिसरण में बाधा पहुँचाती है तब श्वास-कृच्छता उत्पन्न होती है।

यह तो हुई साधारण बातें अब संक्षेप में श्वास-भेदों का भी परिज्ञान आवश्यक हो जाता है–

महाश्वास

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥

प्रनष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः।
विवृत्ताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम्।
महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते–माधव निदान।

यही बात 'वाग्भट निदान' स्थान अध्याय 5 में निम्न रूप में वर्णित है–

महतामहता दीनो नादेनश्वसितिक्रथन्।
उद्धूयमानः संरब्धो मर्त्तषभ इवानिशम् ॥
प्रणष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्त नयनाननः।
वक्षः समाक्षिपन् बद्ध मूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥
शुष्ककण्ठो मुहुर्मुह्य न कर्ण शङ्खशिरोऽतिरुक्।

संक्षेप में भाव यह है कि जिसका श्वास शब्द सहित ऊपर उठता है, वह अति दुखी हो जाता है। उसकी श्वासोच्छवास की ध्वनि बद्ध, मत्त सांड की-सी होती है। वेदनाधिक्य से ज्ञान विज्ञान नष्ट प्राय हो जाता है। नेत्र में लाली और चंचलता, नेत्र क्वचित् फटे हुए, स्तब्ध, मुख, नेत्र मल-मूत्रावरोध, बोलने में असमर्थता, अति बेचैनी, श्वासोच्छवास की आवाज दूर से सुनने में आना। पार्श्व शूल, कंठ सूखना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। यह मारक है--योग्य चिकित्सा के अभाव में रोगी बच नहीं पाता।

यदि बेहोशी, पार्श्व शूल, कंठ सूखना, तीव्रध्वनियुक्त श्वास, लाल नेत्र और गात्र शैथिल्य हो तो महाश्वास समझना चाहिए। वैद्य विनोदकार के मतानुसार यदि प्रवृद्ध महाश्वास से पीड़ित रोगी के नेत्र भ्रमित से और मुखाकृति विकृत हो जाए तो मृत्यु अवश्यंभावी है।

"विभ्रान्तनेत्रो विकृताननः स्यात्
श्वासात् प्रवृद्धान्मरणं प्रयाति।"

ऊर्ध्व श्वास

ऊर्ध्व श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः।
प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुक्लास्योऽरतिपीड़ितः ॥–माधव निदान

वाग्भट के मत में अंतिम दो पंक्तियों में कुछ भेद और विशेषता है।

ऊर्ध्व दृग्वीक्षते भ्रान्तमक्षिणी परितःक्षिपन्।
मर्मसुच्छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धावाक् ॥

इस रोग में प्राण वायु बार-बार ऊपर उठती रहती है, जिससे तीव्रता पूर्वक श्वास निकल तो जाता है, परंतु फुफ्फुस कोषों में पुनः प्राण वायु प्रवेश नहीं कर सकती। इसका कारण कुपित वात का श्लेष्म को विकृत कर श्वासवहा नाड़ियों का मुख मार्गावरोध है। रोगी की दृष्टि ऊपर की ओर ही रहती है। रोगी भ्रमित-सा चारों ओर देखता रहता है। मूर्च्छा (बेहोशी), अतिवेदना, मुँह सूखना, अतिबेचैनी, श्वासोच्छ्वास में कष्ट आदि लक्षण होते हैं। कफ द्वारा मार्गावरोध से वायु कोषों के भीतर वायु की गति नहीं होती, अतः श्वास ग्रहण करने में तीव्र वेदना होती है। कुछ विद्वानों के मतानुसार इस रोग में बहुधा फुफ्फुस धरा-कला कोष में वायु का प्रवेश हो जाता है, जिससे रोगी श्वास नहीं ले सकता, अतः उरस्थान की वातनाड़ियों में उत्तेजना बढ़ने से हृदय की धड़कन बहुत बढ़ जाती है, हृदयावरोध होने लगता है, नाड़ियाँ खिंचने लगती हैं, शरीर श्याम वर्ण हो जाता है। शीघ्र प्रतिकार न होने पर मूर्छित और दुखी हो रोगी मर जाता है।

संक्षेप में—जिस रोग में मर्मस्थान खिंचने लगे, बार-बार बेहोशी होकर श्वास लिया जाए, दृष्टि ऊँची रहे और श्वास मंद हो जाए, उसे उर्ध्व श्वास कहते हैं।

ऊर्ध्वश्वास में अनिःश्वास का कारण निम्न है—

ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुध्यते।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥

साथ ही वैद्य विनोदकार और वाग्भट के मत में भी जब ऊर्ध्व श्वास रोग कुपित होकर नीचे की ओर आने वाले श्वास का निरोध करता है, तब जीव को मार ही डालता है—

"एते सिद्धयेयुरव्यक्ता व्यक्ताः प्राणहराध्रुवम् ।"

डॉक्टरी मतानुसार इसे (Plumonary फुफ्फुस संन्यास) कहा जा सकता है। इसे संयत रक्त जनित अवरोध (Haemorrhagie और Embolie Penumonia) भी कहते हैं। यह रोग परिभ्रामक शल्य (Embolus) द्वारा उत्पन्न होता है। इस शल्य में सामान्य (Simple) और संक्रामक (Infective) दो प्रकार हैं। इसमें विशेषतः दक्षिण फुफ्फुस आक्रांत होता है। शिराओं के मार्ग के किसी अंश में या हृदय के दक्षिण अलिन्द-खंड में रक्त संयत हो, रक्ताभिसरण क्रिया द्वारा गति करता हुआ किसी क्षुद्रतर रक्तवाहिनी में फँस जाता है। निदान सामान्य शल्य किसी अंतिम रक्त प्राणी में निरुद्ध हो जाने पर वहाँ रक्त-संचय होने लगता हैं, परिणामतः उस रक्त से जिस अंश को पोषण मिलता था, वह बंद हो जाता है। फिर शल्य उस निरुद्ध स्थान पर त्रिभुजाकृतकीलक (Infraction) बन जाता है। यह शल्य सब हृत् खंडों की वेदना से उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त शिराओं

में विकृति होकर स्थानिक शल्य (Throbosis) हो जाने से भी उत्पन्न हो सकता है। इस शल्य का तलदेश फफ्फुस की परिधि की ओर रहता है। आक्रांत अंश अति रक्तिम बन जाता है। दबाने पर इससे रक्त भी निकलता है। यदि रोग पुराना हो जाए तो मेदापक्रांति (Fatty Degeneration) होकर अधिक दानेदार (Granular) प्रतीत होता है, स्थानीय तंतु (Tissue) विशेष दृढ़ हो जाते हैं। आक्रांत अंश शोथ युक्त रक्तवृद्धि से पीड़ित होता है और अंत में विशीर्ण और संकुचित (Cirrhotic) होकर विलुप्त हो जाता है और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

त्रिभुजशयल्य के वाह्यांश के समीप होने पर संबंधित फुफ्फुसावरण आक्रांत और दूषित हो जाता है। संक्रामकता की दशा में पूयोत्पादक प्रदाह, स्फोट, फुफ्फुसकोथ (Gangrene) उत्पन्न होते हैं। इसके पश्चात अकस्मात् श्वासावरोध, त्रासदायी कास, रक्तयुक्त कफ स्राव, अति व्याकुलता, नेत्र चंचलता, पार्श्वपीड़ा, नाड़ी क्षीणता आदि लक्षण प्रगट होते हैं। फुफ्फुस पर अंगुलियों से ठेपन करने पर घन ध्वनि Drill resonence, Sthetis cope से सुनने पर वेणुध्वनि (Tuburlar) आदि तथा फुफ्फुस घनता (Consolidation) आदि के सब चिह्न प्रतीत होते हैं। यदि यह त्रिभुजाकृत शल्य क्षुद्र है तो किसी प्रकार का बाह्य लक्षण प्रगट नहीं होता। यदि फुफ्फुसाभिगामिनी शिरा की बड़ी शाखा अवरुद्ध होती है, तो श्वासोच्छवास में तीव्र कष्ट हो कुछ मिनटों में रोगी चल बसता है। संक्रामक (Infective) होने पर रोगी को बुखार, कम्प, ज्वर 102° तक आ जाता है। फुफ्फुसावरण प्रदाह होने पर स्थानिक तीव्र वेदना आदि बाह्य लक्षण प्रगट होते हैं। डॉक्टरी में इस रोग को असाध्य माना गया है।

छिन्न श्वास

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीड़ितः।
न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगदितः ॥
आनाहस्वेदमूर्च्छाऽऽर्तो दह्यमानेन बस्तिना।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः ॥
विचेताः परिशुष्काऽऽस्यो विवर्णः प्रलपन्नरः।
छिन्नश्वासेन विछिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥—माधव निदान

छिन्नाच्छ्वसिति विच्छिन्नं मर्मच्छेद रुजार्दितः।
सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाह निरोधवान् ॥
अधोदृग्विप्लुताक्षश्च मुह्यन् रक्तैकलोचनः।
शुष्कास्यः प्रलपन् दीनो नष्टच्छायो विचेतनः ॥—वाग्भट

इस रोग में पित्त का अनुबंध रहता है। रोगी अत्यंत कष्ट पूर्वक रह-रहकर श्वास लेता है। हृदस, बस्ति और मस्तक में तीव्र वेदना होती है। इनमें भी विशेषकर बस्ति में जलाने और काटने के समान पीड़ा होती है। मलावरोध, अफारा, प्रस्वेद, मूर्च्छा, बस्ति (मूत्राशय) में भयंकर दाह, मूत्रावरोध, नेत्र फटे-फटे से, चंचल और जल पूर्ण होना, दृष्टि नीचे रहना, अत्यंत क्षीणता, मुँह सूखना, चित्तोद्वेग (अस्थिरता), चिल्लाना, निस्तेज होना, प्रायः एक नेत्र का लाल हो जाना, सदा हाँफते रहना, हाथ-पाँव की संधियाँ टूटना, तीव्र वेदना आदि लक्षणोत्पन्न होते हैं। शीघ्र उपचार के अभाव में मृत्यु निश्चित प्राय है। वैद्य विनोद के मतानुसार छिन्न श्वास के रोगी का मुँह सूखता है, ठहर-ठहर कर श्वास लेता है, विलाप करता है, मन अस्थिर हो जाता है, नेत्र फटे से रहते हैं। यदि ये सब लक्षण प्रगट हो जाएँ तो रोगी शीघ्र कालकवलित हो जाता है।

तमकश्वास

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा।
अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥
प्रताम्यति स वेगेन तृष्यते सन्निरुद्ध्यते।
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥
श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृशं भवति दुःखितः।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥
तथाऽस्योद्ध्वंसते कण्ठःकृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम।
न चापि लभते निद्रां शयानः श्वासपीड़ितः ॥
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णंचैवाभिनन्दति ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान्।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते।
स यास्यस्तमकःश्वासःसाध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥
प्रतिलोमं सिराग्रच्छन्नुदीर्यः पवनः कफम्।
परिगृह्य शिराग्रीवमुरः पार्श्वेच पीडयन् ॥
कासं घुर्घुरकं मोहमरुचि पीनसंतृषम।

करोति तीव्र वेगं च श्वासं प्राणोपतापिनम् ॥
प्रताम्येत्तस्यवेगेन निष्ठ्यूतान्ते क्षणं सुखी।
कृच्छ्राच्छयानःश्वसिति निषण्णः स्वास्थ्यमृच्छति ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान्।
विशुष्कास्यो मुहुःश्वासी कांक्षत्युष्णं स वेपथुः ॥
मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते।
सयाप्यस्तमकः साध्यो नवो वा बलिनोभवेत् ॥—वाग्भट

इसे अंग्रेजी में Asthama कहते हैं। जब वायु अपने मार्ग को छोड़ प्रतिलोम की नाड़ियों में प्रवेश करती है तब कंठ और मस्तिष्क जकड़ जाते हैं। श्लेष्माधिक्य से पीनस रोग उत्पन्न होता है। फुफ्फुस और पसलियों में कफ भर जाता है। कंठ में घर-घर ध्वनियुक्त तीव्र श्वास चलता है। हृदयावरोध होना, अंधकार में पड़ा हुआ-सा भान होना, अधिक और बार-बार प्यास लगना, निश्चेष्ट हो जाना, अति वेगपूर्वक कास उठना और कास वेग से मूर्च्छित हो जाना, कठिनता से कफ बाहर निकलना, कफ निकल जाने पर क्षणिक शांति पाना, श्वास नलिका खिंचते रहने से कंठ में वेदना होना और इससे बोलने में कष्ट होना आराम से लेटकर नींद न ले पाना, सोने पर पसलियों में घोर पीड़ा होना, बैठने पर दर्द से कुछ शांति मिलना, नेत्र ऊँचे और शोथयुक्त दीखना, ऊष्ण पदार्थ सेवन की इच्छा, कपाल पर पसीना आना, तीव्र वेदना, मुँह सूखना, अरुचि, क्वचित् कफ की वमन होना, कंप आदि लक्षण होते हैं। यह श्वास बादल और वर्षा होने, शीतकाल में ठंड लगने, पूर्व दिशा की वायु चलने और कफ कारक भोजन करने पर बढ़ जाता है। यह नवावस्था में साध्य और पश्चात् याप्य होता है। भगवान धन्वन्तरी के मतानुसार तृषा, प्रस्वेद, वमन, कंठ में घरघराहट हो विशेषकर जो बादलों के समय में हो जाए उसे तमक श्वास कहते हैं। साथ ही जिस तमक श्वास में श्वास की आवाज बड़ी हो, कफ की अधिकता, बल की न्यूनता अरुचि और सोने में अधिक पीड़ा आदि लक्षण हों वह तमक श्वास दुःखादायी होता है।

वैद्य विनोद इस विषय में लिखते हैं—

आसीन उर्ष्णेर्लभते च सौख्यं, सुप्तस्यपार्श्वे परिग्रह्यवायुः।
आध्मापयेतं तमकं वदन्ति मेघाम्बुशीतैः सहयातिवृद्धिम् ॥

जिस रोग में बैठे रहने और गर्म पदार्थों के सेवन से रोगी सुख पावे, लेटने से पसवाड़े खिंचे, वायु उदर को फुलादे, जल वृष्टि होने, बादल आने और शीतल पदार्थों से बढ़ने वाला श्वास तमक श्वास कहलाता है।

अंग्रेजी मतानुसार इसे Bronchial Asthama कहते हैं। श्वासनलिका की

मांसपेशियों के सूत्रों में संक्षेप आकुञ्चनयुक्त, वातवाहिनियों की पीड़ा को तमकश्वास कहते हैं। इस रोग में यदा-कदा या निश्चित समय पर हाँप या निःश्वास में कष्ट उत्पन्न होता है। प्रायः यह रोग आनुवंशिक होता है। निदान—धूल, कोयला, परमाणु, कीट, औषधि गंध आदि का नासिका में प्रवेश होना इसके उद्दीपक कारण हैं। नासिका की श्लैष्मिक कला, आमाशय, यकृत, अन्त्र और गर्भाशय आदि की उग्रता उत्पन्न होने पर तमकश्वास प्रकाशित हो जाता है। ऋतु परिवर्तन उपदंश, शीशा, पारद, तेजाब, शराब के विष का असर पहुँचने से इसकी उत्पत्ति होती है। आनुवंशिक इतिहास इसकी उत्पत्ति के कारणों पर अधिक प्रकाश डाल सकता है।

मध्यम श्वास नलिका की भित्ति निर्माण में जो स्नायु सहायक हैं और जो सूक्ष्म प्रणालियों तक व्याप्त है, इनसे संबंधित पेशियों का आक्षेप युक्त संकोच तमक श्वास को उत्पन्न करता है। तमक के दो भेद हो जाते हैं—(1) साक्षेप तमक श्वास, (2) नलिका प्रसेक युक्त तमक श्वास। काली खाँसी, रोमान्तिका, [illegible] आदि से श्वास यंत्र में हानि पहुँचने पर यह शिशुओं में भी हो सकता है। विशेषकर यह प्रौढ़ावस्था में होता है और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है।

इसका आक्रमण शीत वर्षा और कभी भयंकर ग्रीष्म में भी हो जाता है। एक बार रोग हो जाने के बाद, तीव्र वात, धूलि-धूम का सेवन, धूप में घूमना, स्थान परिवर्तन, आहार विहार में अनियमितता, अजीर्ण में भोजन, भय, कोष्ठबद्धता आदि से इसका आक्रमण हो सकता है, अतः आजीवन सावधानी की आवश्यकता होती है।

पूर्वरूप—यह प्रायः मध्य रात्रि को, निद्रा भंग कर प्रकट होता है। किसी को आक्रमण से पूर्व अफारा, अपच अतिसार आदि होते हैं। किसी को व्याकुलता, आलस्य, शिरोवेदना, अवसाद, तन्द्रा आदि, किसी को स्वाभाविक स्फूर्ति, किसी को अतिमूत्रता जिसका रंग बदल जाता है और अपेक्षित घनत्व कम होता है। किसी की छाती भारी, किसी को कास, श्वास मार्ग के ऊर्ध्व प्रदेश में उग्रता, वक्ष पर दबाव, आदि तथा ठोड़ी Chin के नीचे अतिशय कण्डू उत्पन्न होती है। वेगागमन से कुछ समय पूर्व रोगी स्वस्थ-सा प्रतीत होता है, फिर अकस्मात् श्वासावरोध हो कंठ रुकता है। सोता हुआ व्यक्ति अचानक उठ बैठता है। फिर आलस्य, तन्द्रा, प्रतिश्याय, सिरदर्द, छींक आदि होते हैं। निःश्वास अपेक्षाकृत दीर्घ तथा श्वास वाहिनियों की प्रशाखाएँ संकुचित हो जाने से श्वास लेने में प्रतिबंध हो जाता है। इसके आक्रमण के समय हाथ सम्मुख दिशा में स्थिर रखता है, स्कन्धों को ऊँचा रखता है, सिर पिछली ओर झुका रहता है। चारों ओर तकिए आदि का सहारा लेकर बैठता है। श्वासोच्छवास कठिनता से और सां-सां ध्वनि के साथ होता है। मुख से शब्द प्रायः नहीं निकलता। रक्त संचालन की विलक्षणता से हाथ-पाँव में शीतलता और मुख पर प्रस्वेद आता है। मुख-मंडल

उद्वेगपूर्ण, मलिन, काला-सा, रक्तावेग ग्रस्त और भयभीत-सा रहता है। कुछ काल बाद श्लेष्मात्मक चिरकारी कास हो जाती है। रोग जीर्ण होने पर सदा सूक्ष्मरूप में श्वास रोग बना रहता है। गर्दन की शिराएँ फूली रहती हैं और फुफ्फुसों में स्वल्प कफ भी संचित रहता है। स्टेथेस्कोप से सुनने पर वंशी-नाद या कूजनध्वनि (Rhenchees) विशेष सुनने में आता है। ठेपन परीक्षा से प्रवृद्धध्वनि Hypar resonance प्रकट होती है। थूक में Curschmann's spirals तथा Charcot Leyden crystals प्राप्त होते हैं। अंत में लियंत्र कपाट की अक्षमता, रक्त-संचालन में व्याघात और शोथ होकर रोग घातक बन जाता है। पथ्य पूर्वक रहना इस रोग में नितान्त आवश्यक है। इसका ही एक अन्य भेद प्रतमक श्वास कहलाता है—

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम्।
उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः॥
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति।
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्सन्तमकं तु तम्॥—माधव निदान
ज्वर मूर्च्छायुतः शीतैः शाम्येत्प्रतमकस्तु सः॥—वाग्भट्ट

यदि तमक श्वास में पित्तानुबन्ध से ज्वर और मूर्च्छा-लक्षण भी हों और शीतल आहार-विहार से वह शांत हो जाता हो अथवा जो तमक श्वास उदावर्त, श्वास, धूम-धूल का प्रवेश, अजीर्ण, परिश्रम, वेगावरोध, मानसिक चिंता, रात्रि में, अंधकार में, उष्ण द्रव्य से बढ़ता हो और शीत पदार्थों के सेवन से शांत हो जाता हो, उसे प्रतमक श्वास कहते हैं। यह जीर्ण होने पर श्वास नलिकाएँ शिथिल और चौड़ी हो जाती हैं। यकृत, आमाशय आदि अपना कार्य भली प्रकार नहीं करते। शरीर से विष बाहर नहीं निकलता, अतः रक्त में विष बढ़ता जाता है। शरीर निस्तेज और निर्बल हो जाता है तथा चक्कर आते रहते हैं। इसमें सम-शीतोष्ण आहार और औषधि अनुकूल होती है।

क्षुद्रश्वास

तत्रायासाति भोजनैः।
प्रेरितः प्रेरयेत् क्षुद्रं स्वयं संयमनं मरुत्—वाग्भट्ट
रुक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन्।
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः॥
हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे॥
न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम्॥
नेन्द्रियाणां व्यथां नापि काञ्चिदापादयेद्रुजम्।

सप्ताध्य उक्तो....–माधव निदान

क्षुद्र श्वास Breathlessness रुक्ष अन्न-पान, व्यायाम, परिश्रम, अन्य रोग तंबाकू सेवन, धातु क्षीणता आदि से उदर में वातप्रकोप होता है, फिर वायु के ऊर्ध्व गति होने पर क्षुद्र श्वास उत्पन्न होता है। इसमें श्वासोच्छ्वास बढ़ जाता है। यह रोग न अधिक दुःख दायी है और न रस रक्तादि निर्माण में बाधक। लक्षण सामान्य होते हैं और यह बलवान व्यक्ति को साध्य होता है। भगवान धन्वन्तरि के मतानुसार कुछ बल का काम करने पर जो श्वास चलने लगे और शांति मिलने पर शमन हो जाए, उसे क्षुद्र श्वास कहते हैं। यह वात प्रधान है।

इन सब श्वासों की साध्यासाध्यता के विषय में लिखा है–

स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्त लक्षणाः।–64 च. चि. अ. 21

क्षुद्रः साध्यो मतस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्चयते।

त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥–सु. उ. 51, श्लोक 11

इनमें क्षुद्र को साध्य, तमक कष्ट साध्य एवं अन्य 3 असाध्य हैं।

चिकित्सा और अन्यान्य बचने के उपाय :- श्वास रोग जैसा कि पहले बताया जा चुका है। मानव का महानतम शत्रु है और एक बार पीछा पकड़कर प्रायः नहीं छोड़ता इसी बात को लक्ष्यकर माधवनिदान में लिखा है।

कामं प्रांणहारा रोगा बहवो न तु ते तथा।

यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु च ॥

इतना ही नहीं इन्द्र के वज्र और दावाग्नि के समान ही यह भी दुर्वार माना गया है–

यथाग्नि रिद्धः खलु काष्ठ संघैव्रजं यथावा सुरराज मुक्तम्।

रोगास्तथैते खलुदुर्निवाराः श्वाससश्च कासश्च बिलम्बितो च ॥

भगवान धन्वन्तरि श्वास की चिकित्सा बलवान और रोगी दो भागों में विभक्त कर कहते हैं–

बलीयसी कफ ग्रस्ते वमने सविरेचनम्।

दुर्बले चैव रूक्षे च तर्पणं हितमच्यते ॥

बढ़े हुए कफ वाले बलवान रोगी को वमन और विरेचन कराना चाहिए। किंतु दुर्बल को वमन-विरेचन निषिद्ध हैं। दुर्बल को और रुक्ष रोगी को तर्पण कराना और पौष्टिक पदार्थ देना हितकर है। वाग्भट के मतानुसार श्वास रोगी के लिए शास्त्रीय धूम्रपान का विधान है–

जत्रूर्ध्वं कफवातोत्थ विकाराणमजन्मने।

उच्छेदाय च जातान्नांपिवेद्‌धूमंसदाऽऽत्मवान् ॥

तमक श्वास में भूलकर भी वातश्लेष्महर गर्म औषधि नहीं देनी चाहिए। यदि श्वास नलिका का प्रदाह न हो तो अफीम प्रधान औषधि देने से शीघ्र लाभ पहुँचता है। आमाशय भरा होने पर वमन लाभदायक है। श्वास कास के बलवान रोगी को गजकरणी या धोती-क्रिया या न्योली-क्रिया भी लाभप्रद है। वैसे संक्षेप में भगवान् आत्रेय के मतानुसार श्वास, हिक्का रोग में कुछ वातघ्न, उष्ण और वात का अनुलोमन कराने वाली औषध तथा भोजन हितकर हैं–

यत् किञ्चित् कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।

भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वास हिक्किनाम् ॥

श्वास रोगी को तीव्र शीतल वायु, ओस में शयन आदि वर्जित है। उसे सम शीतोष्ण स्थान में रहना चाहिए। रात्रि में सात्विक लघु और सूक्ष्म आहार ही करना चाहिए और प्रायः लंघन भी करना हितावह है। वेग के समय टंकण स्फटिक मधु से दें। नमक मिश्रित घृत की छाती ग्रीवा पर मालिश, अडूसा पत्र स्वरस 2 तोला, मधु 6 माशा, सैंधव 4 रत्ती मिलाकर देने से वमन होकर शांति हो जाती है। त्रिकटु, पीपलामूल सब 2 माशे, बहेड़ा चूर्ण 4 माशे मधु में दें। अपामार्ग क्षार 2 माशे घृत में मिलाकर चटाना भी लाभप्रद है। धतूरा फल की राख 1 माशा मधु में चटाने से वेग कम हो जाता है या श्वासकुठार (पीत), श्वास कास चिंतामणि, भार्ङ्गी गुड़ आदि दें। यदि रोगी श्वास के साथ अन्य रोगों से ग्रसित हो, तो उचित औषध दें जैसे उपदंश रोगी के श्वास पर मल्ल सिंदूर वटी, क्षुद्र श्वास में पूर्णचन्द्रोदय रस, तमाखू के व्यसन के साथ अभ्रक भस्म, दशमूलादि घृत में दे। डॉक्टरों के मतानुसार Adrenaline Solution का Injection lc.c या Morphine Hypodermic अकेली या Atropine के साथ या Ephedrine Adrenaline Hydrochloride का Injection दें या अन्यान्य मिक्चर प्रयुक्त करें जैसे Multimix, Angeer's Emulssion आदि।

श्वास रोगी को पथ्य के विषय में सतत सचेष्ट रहना चाहिए। पथ्य-वमन, विरेचन, स्वेदन, कफ नाशार्थ धूम्रपान, स्नेहन, स्वेदन, दिन में शयन (भोजन से पूर्व) सांठी के चावल (पुराने) कुलथी, गेहूँ, जौ, खरगोश, मोर, तीतर, मुर्ग, तोता आदि का मांस, समुद्र तट पर रहना, पुराना घी, पीपल, मूँग का यूष, यवागू, मद्य, हींग, मधु, द्राक्षा (अंगूर), आँवला, बेल, फुफ्फुस और हृदय पर तेल की मालिश, गर्म कर शीतल किया हुआ जल गेहूँ का दलिया, फलके, मूंग की दाल, बकरी का दूध, गोदुग्ध, कटेली, करंज, हरड़, जम्बीरी (नीबू), कच्ची मूली, परवल, बैंगन, तुरई, बथुवा, चौलाई, पालक, लहसुन, खजूर, केला, संतरा, अनार, छोटी इलायची, गोमूत्र, त्रिकटु आदि पथ्य हैं।

मंगलमय रजत जयन्ती पर्व बने

मंगलमय रजत जयन्ती पर्व बने !
नव सपनों को आधार मिले,
भावों को मृदु शृंगार मिले।
दुख भार हटाने, हर जनका,
जगती को अमृत धार मिले ॥
इस मंगल-पर्व में झूम-झूम,
हर हार सुखद जयकार बने ॥
अगणित आशाएँ जन मन में,
संघर्षित होती पल-पल में।
वे, मंगलमय इस अवसर में,
जगती के हरजन, कण-कण में ॥
धर रूप सुभग, वे भाव प्रखर
जन जीवन में साकार बनें ॥
पी, 'स्वास्थ्य' सुधा-धारा भारी,
हों स्वस्थ यहाँ के नर-नारी।
'स्वास्थ्य' सम्पदा से पूरित हो,
ईश ! राष्ट्र की वसुधा सारी ॥
'स्वास्थ्य' सम्पदा में जीवन में
सर्वाधिक उत्कर्ष बने ॥
ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर,
मादक द्रव्यों का नियमन कर,
आर्ष-चिकित्सा का विकास कर,
औ-मानस में यही आस कर,
मंगल मय हो जीवन जनका
रजत जयन्ती अमर बने ॥
मंगलमय रजत जयन्ती पर्व बने !

स्वास्थ्य स्तवन

यदि स्वास्थ्य निज उत्तम जगत में चाहते करना अहो।
बस स्वास्थ्य वधर्क 'स्वास्थ्य' ही निशि दिन यहाँ पढ़ते रहो ॥
दुःख दर्द पाकर भी सभी स्वास्थ्यचर्या रत रहो।
होगी सफलता क्यों नहीं कर्तव्य पथ पर दृढ़ रहो ॥
जो आर्षग्रन्थों और ऋषियों में अटल अनुराग है।
तो जान लो बस स्वास्थ्य ही केवल जगत में सार है ॥
इस की सुरक्षा धैर्यपूर्वक और निशिदिन तुम करो।
होगी सफलता क्यों नहीं विश्वास ऋषियों पर करो ॥
स्वास्थ्य से बढ़ कर जगत में सार कुछ भी है नहीं।
धर्मार्थ आदि प्राप्ति का बस मार्ग केवल है यही ॥
यदि मानते हो 'वेद' को ज्ञान आदि ओ सही।
विश्वास 'पंचम वेद' पर धारो सफलता हो सही ॥
रोग मन्दिर देह है माना सभी ने सर्वदा।
बस स्वास्थ्य की उन्नति चहो निज यत्न से तुम सर्वथा ॥
दिन, रात्रि चर्या ओ ऋतु चर्या में जो विश्वास हो।
क्यों स्वास्थ्य वर्धक 'स्वास्थ्य' से तब स्वास्थ्य फिर उन्नत न हो ?

निर्धन भारत की जनता का बना 'स्वास्थ्य' आधार

निर्धन भारत की जनता का बना 'स्वास्थ्य' आधार।
दीन, हीन रुग्णार्त जनों का रखता सदा विचार ॥
स्वास्थ्य समुन्नत हो हर जन का,
ध्येय पूर्ण हो हर जन-मन का,
ऐसे ही विषयों का जग में करता सदा प्रचार ॥
ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके,
सद्वृत्त का पालन करके।
उचिताहार परिश्रम करके,
उन्नत गौरव करें राष्ट्र का भावी कर्णाधार ॥
निर्धन को भी सदा सुलभ हों,
धनी-निर्धन को सम हितकर हों।
रोग निवारक, स्वास्थ्य-प्रद हों,
ऐसे लेखादिक का इसमें रहता कोष अपार ॥
ईश, कृपा हो अमित 'स्वास्थ्य' पर,
पाठक इसके हो जाएँ, घर-घर।
स्वस्थ नागरिक क्यों न बनें फिर
'स्वास्थ्य' बने जीवननौका का जबकि कर्णधार ॥

स्नान पद्यावली

स्वास्थ्य का स्नान सुभग सोपान।
बिसराना मत इसको साथी, यदि चाहो कल्याण ॥
मालिश और व्यायाम प्रथमकर,
उद्वर्तन तब करना।
कफ मेदादि दूर हटाकर,
ओजस्वी तन धरना ॥
कूप तड़ागादि के जल से,
स्नान विधिवत् करना।
कल्मष दूर हटाकर सारे,
हर्षित निज मन करना ॥
स्नान स्वास्थ्य का दाता है,
यह बात सत्य तू मान ॥
तन्द्रा, कण्डू और पिपासा,
दूर पाप को करता।
निद्रा, दाह पसीना आदि,
और ताप को हरता ॥
जठराग्नि को उद्दीपित कर,
निर्मल इन्द्रिय ग्राम बनाता।
वीर्य, रति-शक्ति वृद्धिकर,
मुख को चमका जाता ॥
दशगुण साथी बने हुए हैं,
मान स्नान की जान ॥
केश नखादि मल द्वारों को,
जो है विधिवत् धोता।
अनपेक्षित अगणित रोगों को,